परम पूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के बाल्य काल के संस्मरण

प्रस्तुति: ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार
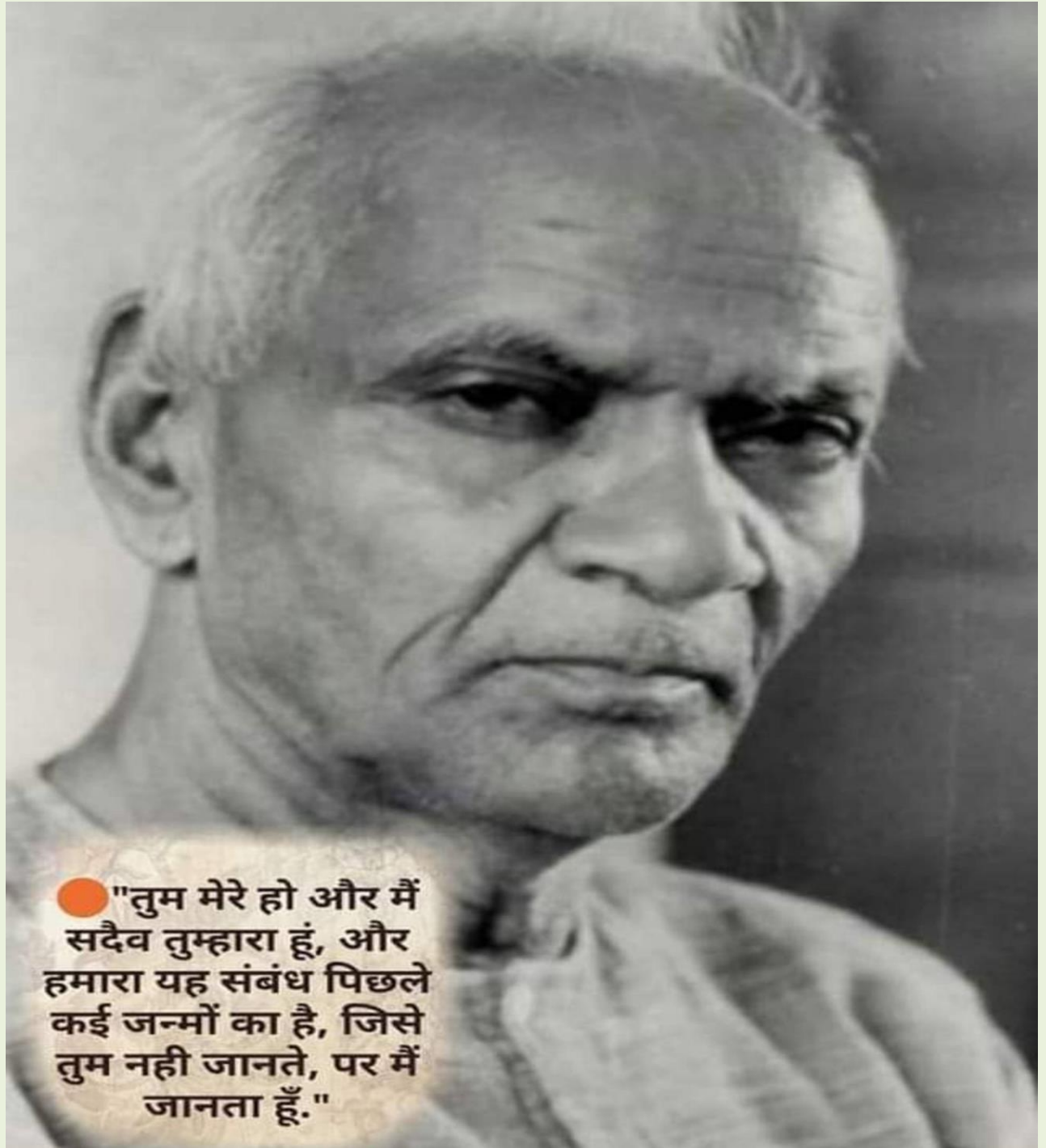
"तुम मेरे हो और मैं
सदैव तुम्हारा हूं, और
हमारा यह संबंध पिछले
कई जन्मों का है, जिसे
तुम नही जानते, पर मैं
जानता हूँ."

आत्मनिवेदन

परम पूज्य गुरुदेव के सूक्ष्म संरक्षण एवं मार्गदर्शन में प्रस्तुत लघु पुस्तिका एक बहुत ही तुच्छ सा प्रयास है । परम पूज्य गुरुदेव के जन्म से पूर्व, जन्म के समय और जन्म के उपरांत दर्शित हुई विलक्षणताओं को इस पुस्तिका में वर्णित करने का प्रयास किया गया है। बाल्यकाल और किशोरवस्था के अत्यंत रोचक एवं दिव्य संस्मरण पाठकों के ह्रदय को अवश्य ही छुएंगे ,ऐसा हमारा अटल विश्वास है ।

इस पुस्तिका में दिया गया सारा कंटेंट ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार के समर्पित पाठकों ने यूट्यूब एवं अन्य सोशल मीडिया साइट्स पर अनेकों ज्ञानप्रसाद लेखों के रूप में न केवल अमृतपान किया बल्कि कमैंट्स करके चर्चा भी की। यह सभी ज्ञानप्रसाद लेख हमारी वेबसाइट पर सुरक्षित हैं, पाठक कभी भी इस लिंक https://l fe2health.org/ को क्लिक करके लगभग 700 लेखों में से किसी का भी अमृतपान कर सकते हैं। उन्ही के सुझाव का सम्मान करते हुए यह प्रयास किया गया है।

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1 का धन्यवाद् करते हैं जिसे इस पुस्तिका का आधार बनाया है।

अक्टूबर 2022 ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार

करबद्ध निवेदन

ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार के समर्पित सहकर्मियों ने इस पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व कई बार पढ़ा है, हमने भी typing errors का पूरा ध्यान रखा है, फिर भी अगर कोई त्रुटि रह गयी हो तो हमें सूचित करें, करेक्ट करने का प्रयास करेंगें।

1.परम पूज्य गुरुदेव के जन्म से पूर्व कुछ विलक्षण घटनाएं :

20 सितम्बर 1911 को हमारे गुरुदेव का जन्म हुआ था। वैसे तो गुरुदेव का जन्म, आध्यात्मिक जन्म के रूप में वसंत पर्व मनाया जाता है लेकिन जन्म के पूर्व, जन्म के समय और जन्म के बाद की विलक्षण घटनाओं की जानकारी प्राप्त करना भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है।

तीन खंडों में प्रकाशित पुस्तक चेतना की शिखर यात्रा के प्रथम खंड को इन लेखों का आधार बनाया गया है। इस पुस्तक के "मातृत्व की विलक्षण अनुभूति" के चैप्टर में यह संस्मरण वर्णित हैं।

गुरुदेव के जन्म के पूर्व उनकी माता जी, जिन्हे परम पूज्य गुरुदेव ताई कहकर पुकारते थे, आदरणीय दानकुंवरि देवी जी के साथ कुछ विलक्षण घटनाएं हुई थीं। भगवान श्रीकृष्ण के जन्म के समय कारावास में माता देवकी और पिता वासुदेव जी के साथ कितनी ही विलक्षण घटनाएं हुई थी हमारे सूझवान पाठक भली भांति जानते हैं । यह तथ्य कितना पुरातन और सत्य है कि आशंका का कोई मतलब ही नहीं उठ सकता है। इस तरह के तथ्य और घटनाएं हमारे गुरुदेव दिव्यता को प्रमाणित करती हैं।

गुरुदेव का जन्म :

हमारे पूज्यवर का जन्म 20 सितम्बर 1911 आश्विन कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को प्रातः 9 बजे हुआ। पितृपक्ष चल रहा था। सनातन धर्म की मान्यता के अनुसार इन दिनों में शरीर छोड़ना और जन्म लेना दोनों ही

विलक्षण हैं। कहते हैं पितृपक्ष में शरीर छोड़ने वालों की आत्मा सीधे पितृलोक चली जाती हैं अथवा नया शरीर धारण कर लेती हैं। उनकी एक-आध सूक्ष्म वासना शेष रह जाती है जिसे पूरा करने के लिए वे शरीर धारण करती हैं। पितृपक्ष में जन्म लेने वाले मानव अपनी वंश -परम्परा के मेधावी पूर्वज होते हैं। वे अपनी परम्परा को आगे बढ़ाने,उसे समृद्ध करने, गौरव बढ़ाने यां पिछले जन्मों में जिन लोगों का उपकार रह गया हो उसे चुकाने के लिए आते हैं। पितृपक्ष,जन्मकुंडली और जन्म से पूर्व होने वाली घटनाओं के आधार पर आंवलखेड़ा के पंडितों ने कहा : “पंडित रूप किशोर शर्मा जी के घर योगी यति आत्मा प्रकट हुई है।” योगी यति आत्मा ऐसी संन्यासी,त्यागी आत्मा होती है जिसने इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो और जो संसार से विरक्त हो।

आगरा,आंवलखेड़ा स्थित एक पुरानी हवेली गुरुदेव व उनके परिवार का निवास था। जलेसर रोड पर स्थित यह हवेली हमें 2019 को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम तो केवल अन्तः करण में guess ही कर सकते थे कि यह हवेली उस समय कैसी होगी क्योंकि हम एक शताब्दी से अधिक की बात कर रहे हैं। हमारे लिए तो आंवलखेड़ा की धरती किसी तीर्थ स्थल से कम नहीं है। गुरुदेव के माता-पिता, चाचा ,ताऊ सभी इक्क्ठे एक joint family की तरह रहते थे। संयुक्त परिवार होने के कारण सम्बन्धियों-स्वजनों का आना जाना बना ही रहता था। घर ने खासी चहल -पहल रहती थी गुरुदेव के पिता जी पंडित रूप किशोर शर्मा जी उस समय

पचपन वर्ष के थे। रूप किशोर जी परिवार में सबसे बड़े थे और ताई सब का पूरा ख्याल रखती थीं। उन्हें जेठानी या सास के बजाय माँ या बड़ी बहन अधिक समझते थे। यह उनका वात्सल्य ही था जो सभी उन्हें इतना आदर सम्मान देते थे। रात्रि के चौथे पहर उठती और देर रात तक सभी का ध्यान रखने में व्यस्त रहतीं।

1911 में ताई को मातृत्व का आभास हुआ। पहली संतान का गर्भ में प्रवेश हुआ। उन्हें विलक्ष्ण से अनुभव होने लगे। अक्सर होता है कि पहली संतान के समय माँ को भय लगता है लेकिन उन्हें कोई भय न महसूस हुआ और न ही कुछ अटपटा। गांव की बड़ी -बूढ़ी स्त्रियों से बात की तो कहने लगीं : "देवता प्रसन्न हो रहे हैं। यह प्रतीतियां वही करवा रहे हैं "

एक सुबह की घटना :

जैसा हम पहले बता चुके हैं ताई जी रात्रि के चौथे पहर उठ कर देर रात्रि तक सभी की देखभाल में व्यस्त रहती थीं, कोई थकावट नही, शरीर में हमेशा स्फूर्ति रहती थी। परन्तु उस दिन पता नहीं क्या हुआ। स्नान इत्यादि से निवृत होकर आगे का सोच रही थीं कि झपकी लग गयी। आँखें खुद ही बंद हो गयीं, याद ही नहीं रहा कि चूल्हे पर दूध चढ़ाया हुआ है। इतनी गहरी झपकी लगी कि ऐसा लगा जैसे नींद लग गयी हो और कोई सपना देख रही हों। इस तरह के दो सपनों के विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है।

ताई का प्रथम सपना :

सपना किसी अज्ञात प्रदेश के वन का है। वह उस निर्जन वन में अकेली हैं। चारों ओर सूर्य की स्वर्णिम आभा बिखरी है। पूर्व दिशा में तप्त अग्नि पिंड की तरह सिंदूरी लाल रंग का गोला (सूर्य) उदित हो रहा है। वातावरण की सुगंध ने ताई को अभिभूत (मुग्ध) कर दिया। सूर्य पिंड प्रखर होता जा रहा था। पिंड के मध्य में एक नारी की आकृति झलक दिखा रही थी। स्वर्णिम कांति से युक्त वह आकृति हंस पर बैठी है, उस आकृति के दाएं हाथ में कमंडल और बाएं हाथ में पत्राकार पोथी थी। ताई जी उस समय स्पष्ट देख नहीं पाईं कि कौन सा ग्रन्थ है। वह समझीं कि भागवत है क्योंकि पतिदेव इसी शास्त्र का पाठ और कथा करते थे। यह आकृति कुछ थोड़ी देर बाद ही लुप्त हो गयी। दूध उबल गया था और कुछ तो चूल्हे में भी गिर गया। गिरने की आवाज़ से सपना टूट गया। ताई ने यह सपना पतिदेव को भी सुनाया ,उन्होंने कहा वह भागवत नहीं, वेद है। ताई को यह दृश्य एक बार और भी दिखाई दिया था। दोपहर में खाना वगैरह समाप्त होने पर परिवारजनों का कुशलक्षेम पूछ कर कुछ देर के लिए बैठी थीं।

ताई का दूसरा सपना :

ताई जी ने भाव समाधि की दशा में देखा कि वह एक सरोवर के किनारे खड़ी हुई हैं। इस सरोवर में कमल खिले हुए हैं। एक बड़े कमल पर वही आकृति विराजमान है जो उस दिन सविता मंडल में देखी थी। पूर्व दिशा से

विमान उड़ते दिखाई दिए ,उनमें बैठी दिव्य सत्ताएं पुष्प बरसा रही थीं। इस बार भी पतिदेव से पूछा तो उन्होंने कहा : यह आपके अंतर्जगत में हो रही हलचल के संकेत हैं। इन संकेतों को चेतना में होने वाले परिवर्तन भी कह सकते हैं। जब किसी पुण्य आत्मा को शरीर धारण करना होता है और वह गर्भ में प्रवेश कर चुकी होती है तो इस तरह के स्वप्न स्वाभाविक हैं।

ताई जी के स्वप्न के अतिरिक्त और भी विचित्र घटनाएं देखने को मिलीं। ताई जी बताती थीं कि अचानक घर में सुगंध फैल जाती थी। ऐसा लगता था जैसे कई अगरबत्तियां जलाई हों यां हवन हो रहा हो। यह सुगंध धीरे - धीरे सारी हवेली में फैल जाती थी। हवेली में अचानक ही कई गायों का आना सब को बहुत ही अचंभित करता था। अपनी गायें तो होती ही थीं परन्तु आस पास से 8 -10 गायें और भी आ जाती और रात भर हवेली में ही रुक जातीं। ढूंढने पर जब पंडित जी की हवेली में से मिलतीं तो सभी को बहुत ही अचम्भा होता। साधारण समय में प्रायः पराये पशुओं को भगा दिया जाता परन्तु ताई जी के स्वभाव में विलक्षण परिवर्तन आया,उन्होंने गायों को भगाने के बजाय उनकी सेवा करनी आरम्भ कर दी, उन्हें चारा - पानी देना आरम्भ कर दिया।

मधुमक्खियों के छत्ते :

विलक्षणता का एक और उदाहरण तब मिला जब हवेली में मधुमक्खियां आकर भिनभिनाने लगीं। इनसे ताई जी को असहजता भी हुई। जिस तेज़ी

से वह भिनभिनाती आयीं, सप्ताह भर में ही उन्होंने तीन -चार छत्ते बना दिए। परिवार में सभी को असुविधा भी हुई परन्तु एक बात बहुत ही विलक्षण हुई। यह मधुमक्खियां किसी को काट नहीं रही थीं। घर वालों ने मक्खियों को उड़ाने का उपाय सोचा। गांव में तो एक ही उपाय होता है। आग जला कर धुआँ करना। जब ताई जी को पता चला कि मधुमक्खियों को उड़ाने का प्रयास किया जा रहा है तो उन्हें अच्छा नहीं लगा। हालाँकि सबसे अधिक असुविधा उन्हें ही होती थी और अंदर बाहिर भी वहीँ चलती -फिरती थीं। उन्होंने डाँटते हुए कहा: अगर यह मधुमक्खियां किसी को काट नहीं रही हैं,अपने घरों में शांति से रह रही हैं तो आप उन्हें क्यों हानि पहुंचा रहे हो। ताई जी के डांट-डपटने पर सब शांत हो गए।

गुरुदेव के पिता पंडित रूप किशोर शर्मा जी कहीं बाहिर गए हुए थे, 8 - 10 दिन बाद लौटे तो उन्होंने भी ताई का समर्थन किया। मधुमक्खियों के इस प्रकार छत्ते बनाने का आध्यात्मिक तथ्य समझाया। कहने लगे ” इस तरह मधुमक्खियों के छत्ते बनना “शिव का संकेत” है। जब कोई दिव्य आत्मा आने वाली होती है तो यह शिव का वरदान है। उनके भेजे हुए प्राणी फूलों की सुगंध और मधु संचित कर ला रहे हैं। यह शिव का अनुग्रह और आने वाली आत्मा का आश्वासन भी है।

2.परम पूज्य गुरुदेव के जन्म के समय और बाद की कुछ विलक्षण घटनाएं

जन्म से पूर्व गुरुदेव के माता जी की अनुभूतियों के बाद, जन्म के समय और उसके बाद वाली विलक्षणताओं का वर्णन प्रस्तुत है। आंवलखेड़ा की पावन भूमि की दिव्य हवेली में जहाँ उस महान आत्मा ने जन्म लिया और और बाल लीलायें कीं,उस माटी को हमारा शत शत नमन है । यही वह हवेली है जहाँ से हम अपनी लेखनी के माध्यम से परम पूज्य गुरुदेव के जन्म का आँखों देखा हाल दिखाने का प्रयास कर रहे हैं।

जन्म के समय:

शिशु का जन्म घर में ही नहीं ,आस पास के गांवों में भी चर्चा का विषय बन गया। आंवलखेड़ा में उस समय केवल 30 -40 घर ही थे। गायों का आना , मधुमक्खियों का छत्ते बनाना सभी स्थानों पर चरितार्थ होने लगा। जन्म होने पर पंडित जी जिन जिन घरों में कथा कहने के लिए जाते थे वहां से भी लोग आए। गांव वालों का आना तो सहज ही लगा परन्तु गांव में साधु सन्यसियों का आना जाना बढ़ गया। पहले कभी इक्का दुक्का ही आते थे परन्तु अब तो चार-पांच सन्यासी प्रतिदिन आने लगे। जिस दिन जन्म हुआ उस दिन 10 बजे तो एक ऊँचा लम्बा तेजस्वी सन्यासी हवेली के बाहर आकर खड़ा हो गया। बच्चे की रुदन सुनकर उसने बच्चे को देखने की इच्छा व्यक्त की। ताई जी को यह अच्छा नहीं लगा और दिखाने में संकोच हुआ परन्तु पंडित जी के समझाने पर मान गयी। बच्चे को देख

कर सन्यासी ने दोनों हाथ ऊपर उठा कर दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया और वापसी का रुख लिया।

कोठरी में नया वातावरण :

ताई जी बताया करती थीं कि गुरुदेव के जन्म पर कोठरी में मधुर संगीत गूंजने लगा। मन्त्रों का पाठ और रामायण की धुन सुनाई देती रहती थी। हो सकता है यह ताई जी का आंतरिक अनुभव यां फीलिंग हो ,लेकिन सन्यासियों का सहसा घर के द्वार पर आकर रुके रहना, चुपचाप खड़े रहना, प्रसूति गृह को टकटकी लगा कर देखते रहना,बच्चे की रोने की आवाज़ को सुन कर चले जाना, अवश्य ही सन्यासियों और गुरुदेव के बीच प्रगाढ़ सम्बन्ध का संकेत है।

“अवश्य ही हिमालय से दिव्य ऋषि सत्तायें अपनी नवजात संतान को देखने आयी हैं ”

नामकरण संस्कार की विलक्षण घटना :

बालक 16 दिन का हो गया। सूतक निवारण के उपरांत नामकरण की व्यवस्था की गयी। सूतक के कारण नवरात्रि की पूजा नहीं हुई थी, हाँ संध्या वंदन और पूजा-पाठ नियमित चलता रहा। नामकरण के लिए विजयदशमी का दिन निश्चित किया गया। गांव के सभी लोग आए, सुबह से लोग आ जा रहे थे। उस दिन एक और विलक्षण घटना हुई जिससे ताई जी और पंडित जी दोनों कुछ विचलित हुए। जो भी आया उसने देखा द्वार

पर एक सन्यासी खड़ा है ,कुछ देर बाद वहां एक साध्वी भी आ गयी। दोनों में कोई संवाद नहीं हुआ, दोनों कुछ देर अविचल खड़े रहे। जब नामकरण संस्कार शुरू हुआ तो दोनों अंदर आ गए। ताई जी की गोद में लेटे बच्चे को दोनों अपलक देखते रहे। ताई जी की दृष्टि उन पर पड़ी तो वह सहम गयीं और शिशु को पल्ले से ढकने लगी। सन्यासी साधु महाराज ने कहा:

"रहने दो माई, हमें भी लाल को देख लेने दो, जी भर कर देख लें, पता नहीं फिर हम लोग रहें या न रहें"

ताई जी को लगा कि बच्चे के बारे में कुछ कह रहे हैं। उन्हें गुस्सा आ गया,साध्वी को तो डांट भी दिया था। ताई जी का गुस्सा थम ही नहीं रहा था। पंडित जी के मुंह से अनायास ही निकल आया, रहने दो “श्रीराम” की माँ, तुम्हारे बच्चे का कोई अनिष्ट नहीं हो सकता ,वह कुशल मंगल ही रहेगा। पंडित जी का कहना था की सन्यासी और साध्वी कहने लगे-पंडित जी हम चलते हैं लेकिन हमारी एक बात मानना, बच्चे का नाम “श्रीराम” ही रखना जो पिता के मुंह से अपनेआप ही   निकला है। यह प्रभु की इच्छा है। इसके बाद ताई जी कुछ नहीं बोलीं। वह दोनों नामकरण संस्कार तक ऐसे ही खड़े रहे। शिशु के नामकरण में पिता और सन्यासियों की अनियोजित सहमति थी। यह चिंतन का विषय है कि क्या पिता के मुंह से “श्रीराम” निकलना अनायास ही था ?

एक और घटना: वृद्ध सन्यासी का हवेली के बाहिर खड़े रहना।

किसी और दिन की बात है कि एक वृद्ध सन्यासी लगभग डेढ़ घंटा हवेली के सामने खड़े रहे। ताई जी उस सन्यासी को भी देख कर बहुत घबराई थीं और बड़बड़ाती हुई बाहिर निकल गयी थीं। कातर भाव से उन्होंने कहा – मेरे बच्चे पर नज़र क्यों गड़ाते हो ,इसने आपका क्या बिगाड़ा है। सन्यासी ने आश्वस्त किया :

"हम बच्चे का अमंगल करने नहीं करने आए हैं और हम केवल दर्शन करने आए हैं। ऐसी भावना थी कि हिमालय से एक सिद्ध आत्मा आपकी गोद में आयी है। हमें किसी तरह से पता चला तो देखने आ गए।"

ताई ने सन्यासी का मन रखने के लिए नन्हे शिशु की एक झलक दिखाई और मुड़ते हुए बोली -अब मैं किसी को अपने लाड़ले को देखने नहीं दूँगी। इतना कह कर ताई जी अंदर जाकर अपने इष्ट द्वारकाधीश के आगे बैठ गयी और कितनी देर तक रोती रही। सन्यासियों की बातों से ताई जी के मन में संशय हो रहा था कहीं उनका बेटा भी सन्यासी न बन जाये और उनसे बिछ्ड़ न जाये। भक्त(ताई) ने भगवान से क्या माँगा यह तो उनका निजी संवाद है परन्तु यह अवश्य माँगा की उनका बेटा कभी भी उनसे दूर न हो।

इसी तरह समय बीतता चला गया। बेटे की तोतली वाणी और हाथ-पांव चलने से माता -पिता बहुत ही प्रसन्न होते। श्रीराम के जन्म के तीन वर्ष

उपरांत परिवार में एक कन्या का जन्म हुआ। नाम रखा गया किरण देवी। थोड़ी देर बाद एक और बहिन आयी ,उसका नाम गुरुदेव के अग्रज नाम (first name) से ही लिया गया और राम देवी नाम दिया गया। ताई जी बेटे की पूरी तरह से ख्याल रखतीं थीं और कभी भी किसी के भरोसे नहीं छोड़ती। बेटियों के जन्म के बाद कुछ समय तो बंटना स्वाभाविक था परन्तु संयुक्त परिवार होने के बावजूद ताई जी पुत्र को केवल पिता के संरक्षण में छोड़ती।

3.परम पूज्य गुरुदेव के बाल्यकाल के कुछ संस्मरण

परम पूज्य गुरुदेव के पिताजी भागवत के प्रकांड विद्वान थे और यह उनका परम प्रिय शास्त्र था। कथा प्रवचनों के अलावा सामान्य समय में भी वे इसी की चर्चा करते रहते। घर पर विद्वानों का जमावड़ा रहता। छोटे-मोटे प्रसंगों में भी वे भागवत के श्लोक सुना देते और हर तरह की समस्याओं का समाधान निकाल लेते। जिन दिनों बाहर रहते उन दिनों भी लोग उन्हें ढूंढ़ते पूछते हवेली आ जाते थे। जब वे घर पर होते तब तो कहना ही क्या? ताई जी उस समय चार वर्ष के श्रीराम को पिता के सुपुर्द कर देती। जब गुरुदेव के पिताजी लोगों की बात सुनते,उनका हल बताते या सामान्य विषयों पर चर्चा करते तो श्रीराम वहीँ होते। चार वर्ष के बच्चे के लिए शास्त्र चर्चा, तत्त्वदर्शन और भक्ति ज्ञान वैराग्य की बातें समझना शायद कठिन तो हो लेकिन वह उन चर्चाओं से बने वातावरण के संस्कार तो ग्रहण करता ही है। बालक अपने पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों से निश्चित ही

समृद्ध था। कह सकते हैं कि नए संस्कारों की आवश्यकता नहीं रही होगी लेकिन उस वातावरण ने संस्कारों को उभारने में सहायता तो की ही।

भागवत कथा सुनकर चार वर्ष के बालक श्रीराम की आँखों में आंसू आ गए:

एक प्रसंग में यमुना तट पर "भक्ति" नामक स्त्री दुःखी और क्लांत होकर बैठी है। पास ही दो बूढ़े व्यक्ति बेहोश पड़े हैं। उन्हें होश में लाने की कोशिश करती हुई यह स्त्री किसी सहायक के आने की प्रतीक्षा करती हुई आसपास देखती रहती है। कुछ स्त्रियाँ उसे धीरज बंधा रही हैं। नारद जी संयोग से पहुँचते हैं और स्त्री से अपना परिचय देने के लिए कहते हैं। वह स्त्री कहती है, मेरा नाम भक्ति है। ज्ञान और वैराग्य ये दोनो मेरे पुत्र हैं। काल के प्रवाह से वृद्ध हो गये हैं। आस-पास जो स्त्रियाँ हैं वे गंगा यमुना आदि नदियाँ हैं जो मेरी सेवा कर रही हैं। फिर भी दुःख दूर नहीं हो रहा है। क्षीण होने का कारण भक्ति ने यह बताया कि पाखंण्डियों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। उनके छल, कपट और दुराचारों से भक्ति रुग्ण और अशक्त हो गई है। यहाँ वृंदावन में आने से अपना रोग और दैन्य तो कम हुआ लेकिन दोनों पुत्रों की बीमारी दूर नहीं हुई। यह कहते हुए भक्ति विलाप करने लगती है। कथा आगे बढ़ती है और नारद जी भक्ति को भागवत का उपदेश देते हैं।

भक्ति को विलाप करने का प्रसंग सुनते हुए उस चार वर्ष के बालक की आँखों से आँसू बहने लगे। पिताश्री प्रसंग आगे बढ़ाते है। भागवत सुनकर भक्ति का उद्धार हुआ उसके दोनों पुत्र भी स्वस्थ, सहज और स्वाभाविक अवस्था में पहुँच गये।

इसी प्रसंग में पिताश्री कहते थे कि "भागवत शास्त्र सभी शास्त्रों का सार है।" इन दिनों हम लोग जिस सनातन धर्म का पालन करते हैं, वह इसी शास्त्र से आया है। ज्ञान, विद्या, आचार, अवतार, भक्ति, कर्म, मंत्र, योग, साधना, इतिहास, पुराण आदि भागवत में ही समाहित है।

4.बालक श्रीराम की शिक्षा का आरम्भ:

हवेली में होने वाली चर्चा और वहाँ के परिवेश ने बालक श्रीराम की शिक्षा का आरंभ किया। विधिवत विद्यारंभ का समय चार साल बीतने के बाद आया। पंडित जी चाहते तो अपने सान्निध्य में ही वेद शास्त्र सब पढ़ा सकते थे लेकिन उनका मानना था कि शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरु का सानिध्य प्राप्त होना ही चाहिए।

आंवलखेड़ा जैसे छोटे से गाँव में एक अध्यापक थे, उनका नाम था पंडित रूपराम। रूपराम जी अपने घर पर ही विद्यालय चलाते थे। पिताजी जी ने श्रीराम को उनके सुपुर्द किया। ताई जी बताया करती थी कि पूजा पाठ के बाद गुरुजी ने तख्ती थमाई। पट्टी सफेद रंग की थी और लकड़ी से बनी हुई थी। उन दिनों स्लेट और चाक आदि का चलन नहीं था। तख्ती और

गेरु की पूजा होने के बाद पहला अक्षर सिखाने लगे। सरकंडे की कलम को घुले हुए गेरु में डुबोया और श्रीराम के हाथ में दिया गया। फिर हाथ पकड़कर तख्ती पर पहला अक्षर लिखवाते हुए कहा 'ग'। श्रीराम ने भी तुरंत अनुकरण किया और गुरुजी उस अक्षर की पहचान बताने के लिए आगे कुछ बोलें उससे पहले ही श्रीराम ने कहा: " ग-गायत्री ? ।" गुरु को कल्पना भी नहीं थी कि छात्र बिना बताए ही अक्षर की पहचान बता देगा। पहचान भी अपने ढंग से। बिना बताए गायत्री से आरंभ करने पर श्रीराम के गुरुजी ही नहीं, वहाँ उपस्थित दूसरे लोग भी चमत्कृत हुए। बाद में गुरु जी ने पूछा श्रीराम तुम्हें किसने बताया कि 'ग' मायने 'गायत्री'। श्रीराम ने कहा कि किसी ने भी नहीं, हवेली में सुना है। गुरुदेव के पिता जी भी यही कथा "भागवत" में कहते थे । गुरु पंडित रूपराम के साथ पं० रूपकिशोर भी गद्गद हो उठे थे। दोनों ने बालक के सिर पर हाथ फेरा और स्नेह से सूंघा।

उन दिनों अभिभावक अपने बच्चे को गुरु के पास रखना ही श्रेयस्कर समझते थे।ऐसा माना जाता था कि छात्र जितना अधिक गुरु के पास रहेगा, उतना ही अधिक सीखेगा। पाठशाला में पन्द्रह-बीस छात्र रहते थे लेकिन यज्ञीय जीवन की दीक्षा और बालक श्रीराम का सोना- जागना अपनी हवेली मे ही रहा। सुबह सात बजे वह बिना नागा पाठशाला पहुँच जाते और देर शाम तक वहीं पढ़ते रहते। पढ़ाई पूरी होने के बाद वापस अपने घर आ जाते।

5.बालक श्रीराम का उपनयन संस्कार:

पांच छह साल यह क्रम चला होगा कि पिता जी के साथ काशी की यात्रा आरंभ हुई। 1915 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय निश्चित हुआ था कि श्रीराम को यज्ञोपवीत दीक्षा मालवीय जी स्वयं देंगे। उस निर्धारण को ध्यान में रखते हुए सात आठ वर्ष की आयु में पिता जी ने चिरंजीव का उपनयन नहीं कराया। उपनयन संस्कार हिंदू धर्मों के 16 संस्कारों में से 10वां संस्कार है। इसे यज्ञोपवित या जनेऊ संस्कार भी कहा जाता है। उप यानी पास और नयन यानी ले जाना अर्थात् गुरु के पास ले जाने का अर्थ है उपनयन संस्कार। प्राचीन काल में इसकी बहुत अधिक मान्यता थी।

काशी जाने पर मालवीय जी के निवास पर ही सादे समारोह में उपनयन संस्कार संपन्न हुआ। संस्कार के समय श्रीराम की आयु ग्यारह वर्ष की थी। मालवीय जी ने गायत्री को सर्ववेदमय और ब्रह्मस्वरूप होने के जो उपदेश दिये थे, वे रास्ते में हर क्षण कानों में गूंजते रहे। दस-बारह वर्ष के बालक के लिए ये उपदेश गूढ़ भी थे और सहज माननीय भी। ग्रहण कर लिये जायें तो पूरे जीवन की दिशा धारा तय हो जाती है। अपनी समझ के अनुसार बालक श्रीराम ने पिताश्री से प्राप्त किये गए उपदेशों के बारे में कई जिज्ञासाएँ की जैसे कि

गायत्री को कामधेनु क्यों कहा है? ब्राह्मण कौन है ? माँ गायत्री किसे सिद्ध होती है?

अगर ब्राह्मण को गायत्री सिद्ध होती है, तो इस जाति के लोग दीन-हीन क्यों होते हैं?

गायत्री को किसने शाप दिया? उस शाप का विमोचन कैसे किया जाय आदि ।

इन प्रश्नों का समाधान रास्ते में ही हो गया।

यज्ञोपवीत के बाद बालक श्रीराम ने संध्या गायत्री जप आरंभ कर दिया। यह बात मन में अच्छी तरह बैठ गई थी कि संध्या गायत्री नहीं करने से यज्ञोपवीत भंग हो जाती है और व्यक्ति पतित कहा जाने लगता है और यज्ञोपवीत संस्कार के समय प्राप्त किया हुआ उसका दूसरा जन्म स्थगित हो जाता है। ऐसा करने पर वह अपनेआप को द्विज कहने का अधिकार खो देता है।

द्विज शब्द का अर्थ क्या होता है?

द्वि का अर्थ होता है दो और ज (जायते) का अर्थ होता है जन्म होना अर्थात् जिसका दो बार जन्म हो उसे द्विज कहते हैं। द्विज शब्द का प्रयोग हर उस मानव के लिये किया जाता है जो एक बार पशु के रुप में माता के गर्भ से जन्म लेता है और फिर बड़ा होने पर अच्छे संस्कार प्राप्त करके मानव कल्याण हेतु कार्य करने का संकल्प लेता है।

काशी से लौटने के बाद बालक श्रीराम ने अपने लिए हवेली में एक कमरा निश्चित कर लिया। वहाँ वे जप ध्यान करते लेकिन संध्या वंदन के लिए खुले में जाते। यह खुलापन घर की छत पर होता या गाँव के बाहर बने शिवालय में। अपने खेत में वटवृक्ष के नीचे भी वे संध्या वंदन के लिए जाते थे। पुत्र को जप ध्यान में इतना नियमित और तन्मय देख कर पिताश्री बहुत प्रसन्न होते थे। वे कहते श्रीराम अपना ब्राह्मण होना सार्थक करेगा। अपनेआप को ही नहीं पूरे कुल को और गायत्री उपासकों को धन्य बनायेगा। पिताश्री जब 'ब्राह्मण' कहते थे तो उनका आशय इस नाम के किसी कुल या जाति में जन्म लेने वाले व्यक्ति से नहीं था। सीधे सादे शब्दों में वह कहते थे,ब्राह्मण वोह है जिसका आचार शुद्ध हो । जो ब्रह्म को जानने और पाने के लिए अपनेआप को तपा रहा हो वही ब्राह्मण है।

बालक श्रीराम का जप ध्यान घर के छत पर, मंदिर में, वट वृक्ष के नीचे और खुले आकाश तले चलता। सुबह पाँच बजे के लगभग उठ जाते और स्नान आदि से निवृत्त होकर संध्या वंदन के लिए बैठ जाते। पूर्व दिशा में सूर्योदय की लालिमा फैलने तक संध्या वंदन और गायत्री जप के साथ सविता देवता के स्वर्णिम प्रकाश का ध्यान होता। जप साधना का पुण्य परमात्मा को ही समर्पित कर बालक श्रीराम वापस लौट आते। सात बजे पंडित रूपराम जी की पाठशाला में पहुंच जाते। वहां शिक्षा के साथ आचार आदि का अभ्यास होता। शाम के समय भी सूर्यास्त होने के ठीक पहले सांयकालीन संध्या शुरू हो जाती। तारे दिखने तक वह संध्या कर्म भी

परब्रह्म को समर्पित हो जाता। यह सिलसिला कई वर्ष तक चला। शायद चार-पाँच वर्ष।

शास्त्रीय मान्यता है कि नियम पूर्वक नियत समय पर विधि-विधान से किया गया गायत्री जप तेजी से आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर ले जाता है। विधि-विधान का तात्पर्य अपनी साधना में श्रद्धा और विश्वास का समावेश है। जो किया जा रहा है, जो समझाया गया है, उसमें प्रत्यक्ष की तरह विश्वास करना।

बालक श्रीराम के बाल्यकाल का खेल – "साधना-साधना खेल" :

आइये देखें क्या है साधना-साधना खेल।

यह तो हमने देखा है कि बालक श्रीराम प्रातः और सायं संध्या और गायत्री जप करते थे लेकिन इसके साथ वह दिन में भी ध्यान का अभ्यास करते। पाठशाला में यह उनका प्रिय खेल था। अध्ययन से अवकाश मिलता तो वे ध्यान जप के लिए बैठ जाते, दूसरे छात्र खेलते रहते। कुछ सहपाठियों ने भी बालक श्रीराम के खेल में रुचि दिखाई। दो-चार साथी मिल जाने पर यह खेल तैयार हो गया। खेल का नाम रखा साधना। इस खेल में खिलाड़ी पालथी मार कर बैठ जाते और उनसे कहा जाता कि आँखे बंद कर उस जगह पर देखने का प्रयास करें जहाँ दोनों भौहें (eyebrows) मिलती हैं। ऐसा देखते हुए अनुभव करें कि वहां सूर्य चमक रहा है। पता नहीं कितने छात्रों ने इस खेल को समझा लेकिन अधिकतर चुपचाप बैठे रहते

और पूछने पर कहते कि बड़ा आनंद आ रहा है। अगले चरण में गायत्री, हिमालय, गंगा, यमुना, सरस्वती, सिद्ध संत और इसी तरह की चर्चा चल पड़ती। इन चर्चाओं में कोई क्रम नहीं होता। यह खेल आधा पौन घंटा तक चलता रहता। कुछ दिन बाद वे चार पाँच सखाओं को लेकर जंगल भी जाने लगे और घनी छाया वाले पेड़ के नीचे बैठ कर यह खेल चलता।

गुफा में साधना:

एक बार श्रीराम अकेले ही गए और तीसरे पहर लौटे। पाठशाला का समय था, विद्यालय में समझा गया कि छात्र किसी काम से घर गया होगा। घर वालों ने समझा कि बालक पाठशाला में ही होगा, इसलिए खोजा नहीं। जिन छात्रों को "साधना-साधना" खेल में रस आने लगा था वे ढूँढ़ते रहे। तीसरे पहर उनके खेल का "लीडर" प्रकट हुआ तो पूछा: "कहाँ गये थे ?" तो बालक श्रीराम ने उत्तर दिया कि एक गुफा मिल गई थी। इस गुफा में कोई नहीं आता इसलिए उसमें आराम से बैठकर ध्यान किया जा सकता है। अगले दिन वह साथियों को लेकर गुफा के पास गए। साथी किसी तरह गुफा तक चले तो गये लेकिन डर के कारण भीतर जाने का साहस नहीं हुआ। श्रीराम अंदर घुस गए लेकिन साथी अपने लीडर के वापस आने तक बाहर ही खड़े रहे। घंटे डेढ़ घंटे बाद श्रीराम वापस आये तो मित्रों ने उलाहना दिया और कहा कि अब आगे से वे इस खेल में शामिल नही होंगे। श्रीराम ने मित्रों का साथ छोड़ जाने की परवाह नहीं की। समय मिलते ही घंटे-आधा घंटे के लिए अकेले ही निकल जाना और गुफा में ध्यान लगाना

जारी रखा। कक्षा से बार-बार गायब होने पर गुरु रूपराम जी का ध्यान भी गया। उन्होंने श्रीराम से सीधे न पूछकर छात्रों से पूछा। गोपालदास नामक छात्र ने बताया तो रूपराम जी ने कहा कि यह बात श्रीराम के घर बता देना।

जब ताई जी को गुफा में जाने की बात पता लगी तो उन्होंने श्रीराम को बुलाकर डांटा और कहा कि शेर चीते की गुफा होगी, किसी दिन तुम्हें देख लेगा तो फाड़ कर खा जायेगा। माँ की डांट सुनकर श्रीराम चुपचाप रहे। उनकी चुप्पी सहम उठने वाली चुप्पी नहीं थी बल्कि उसके पीछे भाव यह था कि माँ कह रही है इसलिए विरोध नहीं करना है। कोई असर न हुआ देख ताई जी ने कहा,"आगे से गुफा के आसपास भी मत फटकना।" कोई जवाब न आता देख फिर कहा: “सुन लिया न, गुफा में नहीं जाना है,बोल नहीं जायेगा।” बालक श्रीराम ने माँ की बात सिर आँखों पर रखते हुए गर्दन हिलाई, हामी भरते ही मां ने पुत्र को हृदय से लगा लिया। इसके बाद कोई दिन ऐसा नहीं बीता था कि श्रीराम विद्यालय न गये हों। जिस किसी दिन नहीं जाना होता तो हवेली से सूचना पहुँच जाती थी कि आज श्रीराम अमुक कारण से विद्यालय नहीं आयेंगे।

हिमालय हमारा घर:

एक दिन न सूचना पहुंची और न ही श्रीराम विद्यालय आए। पंडित रूपराम जी ने सोचा कि किसी कारण सूचना नहीं भिजवाई जा सकी

होगी इसलिए ज़्यादा परवाह नहीं की। उसी दिन देर शाम को हवेली से संदेश आया कि श्रीराम अभी तक घर नहीं पहुँचे, क्या कक्षाएँ देर तक चल रही हैं? रूपराम जी को अब पता चला कि उनका छात्र पाठशाला के लिए निकला तो था लेकिन कहीं और रम गया था । पहली आशंका यही हुई कि शायद ध्यान वाली गुफा में बैठा हो जहाँ महीनों पहले कुछ सहपाठियों के साथ जाया करता था। ताईजी ने कहा: श्रीराम को मना कर दिया था, इसलिए जाने का सवाल ही नहीं उठता। फिर भी एक बार गुफा में तलाशने के लिए कुछ लोग निकले। अष्टमी या नवमी की रात थी। चन्द्रमा की मद्धिम चांदनी में रास्ता देखा जा सकता था, फिर भी जरूरत पड़ने पर मशाल जलाने का इंतजाम कर लिया। गुफा के द्वार पर पिताश्री ने आवाज लगाई। भीतर से कोई जवाब नहीं आया। गुफा की दीवारों से टकरा कर आवाज वापस लौट आई। मशाल जला कर गुफा के भीतर तलाशने का निश्चय किया गया। करीब बारह मीटर लम्बी आड़ी-टेड़ी गुफा के अन्दर तक तलाश लिया। श्रीराम का कोई ठिकाना नहीं था। हार कर सब लोग वापस लौट आए । घर पर ताई जी ने रो-रो कर बुरा हाल बना लिया था। अगले दिन तक खोज चलती रही।

अगले दिन लगभग सात बजे ताई जी के मायके से रुकमणी प्रसाद नामक सम्बन्धी आए। गांव के रिश्ते से वह ताई के चाचा लगते थे। वह रात को ही आ गए थे लेकिन रीति के अनुसार बेटी के घर न रुका जाता है और न ही अन्न- जल ग्रहण किया जाता है। इसलिए वह गाँव के बाहर एक मंदिर

में ही ठहर गए थे। घर में कोहराम देखकर मालूम हुआ कि कुलदीपक कल से लापता हैं। रुकमणी प्रसाद जी का ध्यान एकदम रास्ते में मिले 10-12 वर्ष के बच्चे की और गया। निर्जन रास्ते में अकेले देखकर उन्होंने आश्चर्य से पूछा भी था कि बच्चे कहाँ जा रहे हो तो उसने सहजभाव से उत्तर दिया था "हिमालय।" उत्तर सुनकर रुकमणी जी हँस दिए थे और उनके मुँह से बरबस निकल आया था: नटखट कहीं का। उत्तर पर हँसी इसलिए आई थी कि हिमालय कहीं पास तो है नहीं।आँवलखेड़ा आकर पता चला कि वह बच्चा उनके गाँव की बेटी का ही चिरंजीव है। रुकमणी जी घरवालों को लेकर उस जगह पहुँचे, जहाँ उन्हें श्रीराम मिले थे। उस जगह होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। उसी मार्ग पर तीन-चार मील आगे गए। बरहन गाँव में एक छोटा रेलवे स्टेशन था। यहाँ से हाथरस की ओर जाने वाली गाड़ी मिलती थी।पूछने पर पता चला कि हाथरस के लिए गाड़ी कल दोपहर को गयी थी। आशा बंधी कि श्रीराम यही कहीं होंगे, आसपास ढूंढा, पास ही एक छोटी सी झील थी, श्रीराम झील के तट पर बने शिवालय में ध्यानस्थ बैठे दिखाई दिए। देखकर सभी के सांस में सांस आई। पिताश्री ने ध्यान पूरा होने तक प्रतीक्षा की और आसन से उठते ही पुत्र को कस कर भींच लिया और कहा : यह आयु क्या हिमालय जाने की है ? बिना बताए क्यों चले आए? माता- पिता का दिल दुखा कर भगवान् पाना कौन सा धर्म है? इस तरह के कितने ही प्रश्न पूछते हुए उन्होंने अपने बेटे के सिर पर गंगा-जमुना बहा दी। पिता ने तो रो धोकर अपने आपको समझा लिया

लेकिन ताई जी रोते- विलाप करते पागल सी हो गई थी। उनके विलाप में श्रीराम के जन्म समय आने वाले साधु संन्यासियों, स्वप्नों, भविष्यवाणियों और पूजा पाठ आदि सभी कुछ लपेट में आ गए। हर किसी को उन्होंने जम कर कोसा, जो उनके हिसाब से श्रीराम में तप और साधना की प्रेरणा के लिए जिम्मेदार था।

पुत्र ने माँ को समझाने का प्रयास किया और कहा कि साधु महात्माओं को मत कोसिये,अपने द्वारकाधीश को मत कोसिए। आप मुझे कोसिये क्योंकि मैंने आपको कष्ट दिया है।

थोड़ी देर बाद ताई जी का रुदन कुछ थमा, फिर रुंधे हुए कण्ठ से बोलीं,"तुमने मुझे कष्ट दिया है न? अगर मानते हो तो मुझे एक वचन दो।" बालक श्रीराम आगे की बात सुनने के लिए टकटकी लगा कर देखने लगे। ताई जी ने कहा,"वचन दो कि मुझे छोड़ कर साधु संन्यासी बनने की बात कभी सोचोगे भी नहीं । तुम हिमालय की आत्मा हो तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे जीवित रहने तक सिर्फ श्रीराम हो। मेरे सामने हिमालय में बस जाने की बात कभी मत सोचना। मेरे बाद चाहे जहाँ रहना।" ताई एक-एक वाक्य सोच समझ कर कह रही थी। श्रीराम ने भी एक-एक शब्द गौर से सुना और कहा, "ताई मैं हमेशा आपके साथ रहूँगा। ब्रजक्षेत्र को छोड़कर भी नहीं जाऊँगा क्योंकि आपको ठाकुर जी का घर बहुत भाता है न।" लाड़ले का यह आश्वासन सुनकर ताई तुरन्त शान्त हो गईं । उनकी शान्ति में यह दृढ़ विश्वास भी था कि बेटे ने जो कह दिया है, उसका

अक्षरशः पालन करेगा, वह दिन हवेली में उत्सव की तरह मनाया गया। माँ परम आश्वस्त थी कि उनका दुलारा अब कभी उनसे नहीं बिछुड़ेगा।

4.बालक श्रीराम का बाल्यकाल में प्रथम सामाजिक अनुष्ठान:

हिमालय को अपना घर बताते हुए निकल जाने और वापस लौट आने के बाद शिक्षा-दीक्षा फिर पहले की तरह चलने लगी। अब पिताश्री ने भी ध्यान देना शुरू किया। चार-छह महीने में उनकी प्राथमिक शिक्षा पूरी हो जानी थी। सावधानी के तौर पर यह जरूरी समझा गया कि बालक को आगे पढ़ने के लिए गाँव से बाहर नहीं भेजा जाय। पिताश्री भागवत के विद्वान् तो थे ही। उन्होंने 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' पढ़ाई, फिर 'मध्य' और 'सिद्धान्त कौमुदी' पढ़ाई। प्राथमिक शिक्षा पूरी होने के बाद और समय मिलने लगा। भागवत, रामायण और महाभारत के बाद आर्षग्रन्थों में भी अच्छी गति होने लगी। पिताश्री को आभास होने लगा था कि उनकी इहलीला पूरी होने वाली है। गुरुजी की पाठशाला छूटने के बाद उन्होंने पुत्र से कह दिया था कि दो साल तक सब कुछ भुला कर विद्या ग्रहण करो। उनके मन में सम्भवतः विरासत के रूप में भागवत देकर जाने की बात रही होगी। शायद सोचा होगा कि पुत्र भी उनकी ही तरह भागवत का उपदेश करे।

श्रीराम की विद्या वितरण की अद्भुत स्कीम :

आइए देखें बालक श्रीराम ने वरिष्ठों को प्रेरित करने के लिए विद्यादान की क्या स्कीम अपनाई।

पं. रूपराम जी की पाठशाला में पढ़ना, लिखना और बांचना (बांचने का अर्थ होता है पढ़कर कर सुनाना) अच्छी तरह आ जाने के बाद बालक श्रीराम के मन में ग्रहण की गयी विद्या को बांटने की तीव्र इच्छा का उदय हुआ। जिस प्रकार मालवीय जी से यज्ञोपवीत लेने के बाद उन्होंने दूसरे बच्चों को भी जप ध्यान सिखाना शुरू कर दिया था, उसी तरह बालक श्रीराम के मन में विद्या के प्रसार की इच्छा यानि ज्ञान बांटने की इच्छा उमगने लगी। पिता से शास्त्र और संस्कृत सीखने के बाद जो भी थोड़ा बहुत समय बचता, श्रीराम उस समय में चौपाल पर चले जाते। वहाँ कोई न कोई बैठा ही होता था। चार पांच लोग भी जमा हो जाते तो श्रीराम उन्हें पढ़ने-पढ़ाने को प्रेरित करते। श्रीराम उन्हें कुछ पढ़कर समझाते और फिर उन्हें दोहराते हुए सुनाने को कहते। जिन्हें अक्षर ज्ञान था और थोड़ा बहुत पढ़ना आता था, वे तो सुना देते लेकिन जिन्हें पढ़ना नहीं आता वे चुप रह जाते। श्रीराम उनसे कहते कि आप पढ़ते क्यों नहीं? नहीं आता है तो सीख लेना चाहिए। आमतौर पर उत्तर होता था कि अब पढ़ने से क्या लाभ, अब तो उमर बीत चली है, जो थोड़ी बहुत बची है, वह भी ऐसे कैसे कट

जाएगी। ऐसे निराशा भरे उत्तर सुनकर शुरू में तो किसी का विरोध नहीं किया और न ही कोई काट की लेकिन जब सभी यही उत्तर देने लगे तो एक दिन श्रीराम ने पढ़ाई की चर्चा छेड़े बिना कहा, “जिस गुफा में मैं ध्यान करने जाता था, वहाँ एक खजाना गड़ा हुआ है।” खजाने का नाम सुनकर चौपाल पर बैठे लोगों की आँखे चौड़ी हो गई। बालक की आध्यात्मिक रुचि और साधना स्थिति के बारे में तो सभी लोग जानते थे इसलिए किसी ने भी न तो शक किया और न हँसी उड़ाई । एक बुज़ुर्ग ने कहा: “उस खजाने को निकालने के लिए क्या करना होगा?” बालक श्रीराम ने कहा, “ख़ज़ाना निकालने का रास्ता तो जाना जा सकता है लेकिन आप उस ख़ज़ाने का क्या करोगे,आपकी तो उमर निकल गई है, थोड़ी बहुत बची है वह भी ऐसे ही कट जाएगी।” उन बुजुर्गों की समझ में नहीं आया कि श्रीराम उनके किस बहाने का उत्तर दे रहे हैं। उन्होंने कहा, “नहीं,नहीं ख़ज़ाने का उपयोग तो किसी भी उम्र में किया जा सकता है।” श्रीराम ने कहा, “उस ख़ज़ाने यानि धन को पाने के लिए आपको विद्याधन कमाना होगा। अगर आप पढ़ना,लिखना सीखोगे तभी उस धन को पाने वाला विधि विधान समझने के काबिल हो सकोगे। यह तथ्य समझाने के बाद कुछ बुजुर्ग पढ़ने के लिए तैयार हुए।

कहते हैं कुछ लोगों ने उसके बाद गुफा में जाकर खोज की तो एक चट्टान के नीचे छुपाए हुए स्वर्ण आभूषण निकले। ये आभूषण धांधू नामक डकैत का छुपाया हुआ लूट का माल भी हो सकता है या महज संयोग। बहरहाल

अध्यापन के दौरान श्रीराम ने उन बुजुर्गों को कुछ भजन और रामायण की चौपाइयाँ जरूर सिखा दी थी। कुछ श्रद्धालु बुजुर्गों को उन्होंने जप के बारे में समझाया और कहा था कि "मुँह से जप करने के बजाय लिखकर जप करना ज्यादा पुण्यप्रद है। मुँह से बोलने पर तो केवल जीव ही तरता है लेकिन लिखने पर इतनी शक्ति आती है कि साधक पत्थर को भी तार दे। लिखित जप करने वालों की वाणी इतनी प्रभावशाली और अचूक हो जाती है कि साधक जो भी शाप या वरदान देता है, पूरा होता है। यही कारण है कि मंत्र लेखन पर इतना बल दिया जाता है।

बालक श्रीराम का यह पहला सामाजिक अनुष्ठान था, आयु केवल 10-11 वर्ष ही होगी। डेढ़ वर्ष में उन्होंने करीब चालीस लोगों को पढ़ना लिखना सिखा दिया था। अनेक विद्यार्थी इतना सीख गए थे कि प्राथमिक कक्षा की परीक्षा में बैठें तो आराम से पास हो जाएँ।।

5.आंवलखेड़ा गांव की 1920 के आसपास की पिक्चर:

आँवलखेड़ा छोटा सा गाँव था। जितने भी लोग रहते थे, सब एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। किस परिवार के कितने सदस्य हैं, कहाँ कहाँ रिश्तेदारी है और किन पुरखों की क्या विशेषता रही है। हर घर के वयस्क व्यक्ति को दूसरे परिवारों के बारे में यह भी पता होता था कि वहाँ कौन कब आया है। लोग एक दूसरे के सुख दुःख में काम आते थे। अपनेआप में सिमट जाने की प्रवृत्ति बीसवीं शताब्दी के साठ के दशक के बाद वाले वर्षों

में अधिक प्रबल हुई है ,अधिकतर लोग एक दूसरे के अच्छे-बुरे में काम आते रहे हैं। आँवलखेड़ा भी अपनी तमाम अच्छाइयों और बुराइयों के साथ जी रहा था। बुराइयों में सबसे बड़ी बुराई जातिगत ऊँच-नीच या छूआछूत की थी। यह स्थिति बड़ी विचित्र और अबूझ थी कि लोग पिछड़ी जाति के लोगों से नफरत नहीं करते थे, उनके सुख दुःख का ध्यान भी रखते, लेकिन उनसे दूर-दूर रहते थे। ब्याह-शादियों में उन्हें बुलाया जाता था, लेकिन उन्हें अपने समूह में शामिल नहीं किया जाता था। उन्हें अलग पांत में भोजन कराया, बिठाया जाता, उसी तरह अगवानी की जाती और विदा भी दी जाती । घृणा नहीं होते हुए भी दुरदुराने की यह आदत किसी दोष का ही परिणाम थी। पिछड़ी जाति के लोग भी जैसे इस स्थिति के आदी हो चुके थे। वे ऊँची जाति वालों की बस्ती में नहीं जाते। उनके घरों के सामने से नहीं निकलते। निकलना ही होता तो जूते हाथ में लेकर नंगे पाँव निकलते । उनका सिर झुका होता और टोपी या साफा भी उतार कर हाथ में रख लेते। ऊँची जाति वालों को छूना तो दूर अपनी छाया भी उन पर नहीं पड़ने देते। उच्च जाती के लोग भी इस बात का ध्यान रखते थे कि निम्न जाति के लोग उन्हें छू न जाय, उनकी छाया न पड़ जाए, या सुबह-सुबह उनका मुँह न दिखाई दे जाए। लोग इन प्रचलनों केअभ्यस्त हो गए थे। यह समझना मुश्किल था कि लोग दबाव में इनका पालन कर रहे हैं या स्वयं ही निभाए जा रहे हैं। कभी कोई घटना होती तो यही समझ आता था कि ऊँची जाति वालों ने निम्न जाती वालों को इन प्रचलनों का अभ्यस्त बना

दिया है। गलती से या स्वाभिमान का थोड़ा सा उदय होने पर कोई उच्च जाति को छू जाता तो उसे दण्ड झेलना पड़ता था। यह दण्ड पिटाई से लेकर बेगार (forced labour) देना बंद हो जाने के रूप में भुगतना पड़ता। आर्थिक स्थिति जैसी कोई उल्लेख करने योग्य बात उन पर लागू होती ही नहीं थी। उनकी रोटी उच्च जाति की दया कृपा पर ही चलती। वह बंद हो जाती, बेगार मिलना रुक जाता तो जीना दूभर हो उठता था। कभी किसी को रोग बीमारी हो जाए तब भी जीना कठिन हो जाता ।

6.निम्न जाति की महिला छपको की बहुचर्चित कथा पार्ट 1:

अगले कुछ पन्नों में हम परम पूज्य गुरुदेव के जीवन का बहुचर्चित वृतांत, निम्नजाति की महिला "छपको की कथा" का वर्णन करने का प्रयास करेंगें। यह वृतांत इतना चर्चित है कि अधिकतर परिजन इसे जानते हैं लेकिन हम इस वृतांत की उन बारीकियों को छूने का प्रयास करेंगें जो इतिहास की परतों में दब कर रह गयी हैं। हमारा विश्वास है कि इस वृतांत से ग्रहण की जाने वाली शिक्षा से हमारे पाठक परम पूज्य गुरुदेव के चरणों में शीश झुकाए बिना नहीं रह सकते ।

यह वृतांत परम पूज्य गुरुदेव के जीवन के उन दिनों को समर्पित है जब उनकी आयु केवल 12 वर्ष की थी।

घटना 1923 की है, लगभग 100 वर्ष पुरानी, इस एक शताब्दी में हम कितना बदल पाए हैं शायद किसी से छिपा नहीं है । आँवलखेड़ा गांव के

एक कोने में, जिसे गाँव से बाहर कहना ही ठीक होगा, चार-पाँच झोंपड़ीनुमा घर बने हुए थे। इन घरों में जमादार और डोम जाति के परिवार रहते थे। इस तरफ कोई झाँकता नहीं था, मझली जाति के लोग, उच्च जाति (स्वर्ण) के लोग सभी घृणा करते थे। दलित बस्ती की एक स्त्री छपको गुरुवर की हवेली की सफाई करने आया करती थी। बड़ी उम्र के लोग उसे नाम से बुलाते थे और छोटे बच्चे चाची या अम्मा कहते थे। छपको नियमित रूप से दरबार लोगों के घरों में जाती थी। स्वर्णों को तब ये लोग दरबार ही कहते थे। हारी बीमारी में भी वह नहीं चूकती थी। एकाध दिन का नागा हो जाय तो दरबार लोग हाय तौबा मचा देते थे, दस बातें सुनाते और अधिक हो तो काम छुड़वाने की धमकी देते थे। धमकी और सज़ा के डर से सर्दी, खाँसी और हाड़ बुखार के समय भी छपको की जाति बिरादरी के लोग कभी नागा नहीं करते। किसी की तबियत अधिक खराब होती तो उसकी जगह दूसरा (substitute) कोई आता।

छपको को कभी किसी ने बीमार पड़ते नहीं देखा था। उसके मुँह से किसी ने सिरदर्द की शिकायत भी नहीं सुनी थी। एक दिन छपको हवेली नहीं पहुंची। शाम तक इंतजार किया, वह नहीं आई। अगले दिन भी यही हाल था। वह सफाई के लिए नहीं पहुँची। पास-पड़ोस में पूछा तो वहाँ भी नहीं गई थी। चार-पाँच दिन बीत गए। छपको के परिवार में कोई और नहीं था कि अपनी जगह दूसरे को भेज देती। लोगों ने सोचा कि दूसरा इंतजाम किया जाय। किसी को यह नहीं सूझा कि वह बीमार भी हो सकती है। घर

में छपको की जगह किसी और को बुलाने की बात चलने लगी तो श्रीराम के कान में भी पड़ी। उन्हें लगा कि हो न हो छपको अम्मा की तबियत खराब हो गई होगी। उन्हें कोई दवा दारू देने वाला नहीं है इसलिए वे नहीं आ पा रही हों। ताई जी से उन्होंने कहा भी कि छपको अम्मा को दवाई देनी चाहिए। ताई जी ने गाँव-घर के रिवाज के अनुसार कह दिया जब यहाँ आएगी तब दे देंगे। श्रीराम ने कहा कि वह ठीक होगी तभी आएगी न । बिना दवा के ठीक कैसे होगी? इसी क्षण किसी ने यह कह कर डांट-डपट दिया कि जरूरी है कि वह बीमार ही पड़ी हो, हो सकता है गाँव छोड़कर चली गई हो।

श्रीराम को इस उत्तर में उपेक्षा अधिक दिखाई दे रही थी। उनका मन मान ही नहीं रहा था। न जाने क्यों लग रहा था कि छपको अम्मा बीमार है। उन्होंने अपने साथियों से भी बात की कि क्या किया जाय। श्रीराम की सलाह थी कि उनके घर जाकर खोज खबर ली जाय। साथियों के पास बात पहुंची तो एक ने कहा कि हम उनके घर कैसे जा सकते हैं। वहाँ जाएँगे तो हमें घरवालों से मार पड़ेगी। दूसरे ने कहा हमारे घरवाले हमें घर में घुसने ही नहीं देंगें । तीसरे ने कहा वहां जाना हम लोगों के बस का बात नहीं है। किसी बड़े को जाकर छपको अम्मा की खोज खबर लेनी चाहिए। सभी साथी किसी न किसी बहाने छपको के घर जाने की बात टाल गए।

श्रीराम ने इसके बाद किसी से कुछ नहीं कहा। चुपचाप उस बस्ती की ओर चल दिए जहाँ छपको अम्मा रहती थी। कूड़े-कचरे और गन्दगी के ढेर

पार करते और बदबूदार गन्दी सड़ी नालियाँ लाँघते फाँदते हुए छपको अम्मा की झोपड़ी के सामने पहुँच गए। चार-पाँच घरों में सही ठिकाना मालूम करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। दरवाजे पर पहुँच कर श्रीराम ने पुकारा। अंदर से कोई आवाज़ नहीं आई तो दरवाज़े पर लगी घास-फूस की आड़ हटा कर झाँका । छपको अम्मा बेसुध सी चटाई पर पड़ी थीं । पाँवों की आहट सुनकर उन्होंने आँखे खोलीं, श्रीराम को देखकर हड़बड़ा उठी और बैठने की कोशिश करने लगी, लेकिन बैठ नहीं पाई। उठने की कोशिश में वापस गिरते हुए छपको अम्मा ने कहा कि यहाँ क्यों आए हो, घर पर पता चलेगा तो मार पड़ेगी। श्रीराम ने कुछ नहीं सुना। हाथ लगा कर देखा, बुखार के कारण शरीर बुरी तरह तप रहा था। श्रीराम ने हथेली देखनी चाही क्योंकि उन्हें याद था कि जब घर में किसी को बुखार आता है तो हथेली और जीभ वगैरह देखते हैं। हथेली में घाव था। उससे बदबू आ रही थी और पीब बह रही थी। शायद घाव सड़ने लगा था और इसी की वजह से बुखार भी आ रहा था। श्रीराम ने कहा कि चिंता मत करो, मैं दवा लेकर आता हूँ। छपको अम्मा कुछ कहे,उससे पहले ही श्रीराम झोंपड़ी के बाहर की ओर भागे। दवाखाना तो बहुत दूर था। झोंपड़ी से बाहर निकल कर पहले तो उन्होंने पड़ोस से पानी लिया और अम्मा को पिलाया। फिर दौड़कर वापस चले गए और मरहम पट्टी का सामान लेकर कुछ ही मिनटों में लौट आए। साफ धुले हुए कपड़े की पट्टी बनाई, जाने कहाँ से लाल दवा और मरहम का जुगाड़ कर लिया। मरहम पट्टी करने के बाद काढ़ा बनाकर

पिलाया ताकि बुखार कुछ कम हो जाए। छपको अम्मा की आँखें डबडबा आई। दवा से अधिक सेवा और सहानुभूति ने काम किया। उन्हें नींद आने लगी। फिर आने की बात कह कर श्रीराम वापस चले गए।

इसी उधेड़बुन में रमते हुए कि अगले दिन के उपचार का क्या प्रबंध करना है श्रीराम हवेली आ गए। देखा बाहर द्वार पर ही चाचा खड़े हुए हैं। उनके हाथ में एक कलश है। द्वार पर आते ही उन्होंने कलश से जल निकाला और दोनों हाथों से भर कर तीन बार श्रीराम पर छिड़का। फिर दरवाजे के बाहर ही नहाने के लिए कहा। कपड़े वहीं लाकर पहले से रखे हुए थे। नहाने के बाद वे कपड़े पहने और पहने हुए कपड़े वहीं छोड़ दिए। “शुद्धिकरण” की यह कार्रवाई पूरी होने के बाद ही श्रीराम अंदर आए। उन्होंने कोई सवाल नहीं किया। यही कहा कि गंगाजल के साथ कुछ और जोड़ी कपड़ों का इंतजाम भी कर लेना। आगे कई दिन तक छपको अम्मा के यहाँ जाना है। पश्चाताप और क्षमा माँगने या सफाई देने के बजाए श्रीराम के यह वचन सुनकर घर के लोग हैरत में पड़ गए। श्रीराम ने अगली बात यह कही कि जब तक अम्मा का घाव ठीक नहीं हो जाता, रोज जाऊंगा। उत्तर में उलाहना या व्यंग्य नहीं था। निश्चय की झलक दिखाई दे रही थी। इस उत्तर पर खासी डाँट पड़ी और सज़ा के तौर पर उस दिन उपवास रखने के लिए कहा गया। डाँट, दण्ड और दबाव से अप्रभावित श्रीराम अगले दिन भूखे ही छपको की सेवा करने चले गए। मरहम पट्टी कर, दवा देकर वापस लौटे तो हवेली के बाहर ही ठिठक गए । ताई जी मन ही मन

रो रही थीं लेकिन प्रचलन के विपरीत जाने का साहस भी नहीं कर पा रही थीं। नहाने धोने का इंतजाम कर दिया। चाचा-भतीजों की राय थी कि अगर श्रीराम छपको के यहाँ जाना छोड़ते तो उन्हें घर के भीतर न आने दिया जाए,उनके रहने की व्यवस्था बाहर की कोठरी में कर दी जाए और वहीं मिट्टी के बरतनों में भोजन परोसा जाय। परिवार में आए अतिथि सम्बन्धियों ने भी इस व्यवस्था की पुष्टि कर दी।

पुत्र,समझो तुम्हारा भी एक पुरश्चरण हो गया -छपको अम्मा का बहुचर्चित प्रसंग पार्ट 2:

यह वृतांत आंवलखेड़ा की उस दिव्य हवेली के द्वार का है जहाँ उस समय के भागवत के प्रकांड पंडित रूपकिशोर जी हमारे गुरुदेव को इस कार्य के लिए आशीर्वाद दे रहे हैं और छपको अम्मा की सेवा को एक पुरश्चरण के समान बता रहे हैं।

अछूत सेवा के अनोखे प्रायश्चित का निर्वाह करते हुए ताई जी ने मिट्टी के बर्तन में रोटियाँ और दाल सब्जी रख दी। भोजन देख कर श्रीराम ने दो रोटी और दाल सब्जी ली और बस्ती की तरफ बढ़ गए। वहाँ छपको को जगाकर रोटी खिलाई। अपने हाथ से भोजन कराते हुए श्रीराम और छपको दोनों ही आनन्द विभोर थे। छपको को खाना खिलाकर सुलाकर श्रीराम वापस लौटे। घर पर जिस कोठरी में उनके लिए प्रबंध था उसी में बैठकर भोजन किया। दिन भर घर से बाहर नहीं निकले। बाहर निकलने पर कोई

लाभ नहीं था। गाँव भर में खबर फैल गई थी कि श्रीराम बस्ती में जाते हैं, छपको की मरहम पट्टी करते हैं। उन्हें अस्पृश्यता दोष लग गया है, इसलिए किसी को उनका संसर्ग नहीं करना चाहिए। गाँव वालों ने अपने बच्चों को श्रीराम के साथ खेलने से सख्त मना कर दिया था।

सात आठ दिन की मरहम पट्टी और उपचार के बाद छपको का घाव सूख गया। बुखार भी नहीं रहा। वह अपने हाथ से खाना बनाने लगी, तब श्रीराम ने बस्ती में जाना बंद किया।

इस बीच अलवर में भागवत कथा सम्पन्न कर पिताश्री घर लौट आए थे। देहरी पर पाँव रखते ही उन्होंने श्रीराम को बाहरी कोठरी में जमीन पर चटाई बिछाए सोते हुए देखा। तुरन्त पूछा कि क्या हुआ? यहाँ क्यों? छोटे भाई यानि देवलाल चाचा ने पूरा घटनाक्रम सुना दिया। उन्हें आशा थी कि शौचाचार यानि शुद्धिकरण   का इतनी कड़ाई से पालन हुआ देख कर बड़े भैया प्रसन्न होंगे। आज तक आँवलखेड़ा और आस-पास के गाँवों में किसी ने भी बस्ती में जाकर अपना धर्म नहीं बिगाड़ा था। ऐसी स्थितियाँ ही नहीं बनी थीं कि कोई निर्णय लेना पड़े। अपने यहाँ स्थिति बनी और छोटे भाई ने अपने भतीजे के लिए ही दृढ़ व्यवस्था दे दी। धर्माधिकारी का दायित्व अच्छी तरह निभा लेने के लिए सराहना भी होगी। श्रीराम के चाचा मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि उन्हें बड़े भाई से ऐसी सज़ा देने के लिए पुरस्कार मिलेगा लेकिन हुआ इसके बिल्कुल ही उलट। पंडित जी ने कहा देवलाल तुमने यह क्या किया? भागवत परिवार में किसी को सेवा टहल

के लिए प्रायश्चित करना पड़े, यह धर्म के विरुद्ध है। उन्होंने श्रीराम की पीठ थपथपाई और कहा पुत्र तुमने भागवत धर्म के मर्म को समझ लिया है। इस बीच आस-पास के लोग भी हवेली में आ गए थे। वे पण्डित जी को प्रणाम करने आए थे। लेकिन देवलाल को उलाहना मिलते देख ठहर गए थे। पण्डित जी कह रहे थे तुमने संत एकनाथ की कथा तो सुनी है न। एकनाथ जी ने गंगोत्री से लाया गंगाजल रामेश्वरम में भगवान् शिव पर न चढ़ा कर एक गधे को पिला दिया था और भगवान् ने उसे अभिषेक के रूप में ग्रहण कर लिया था।

परम पूज्य गुरुदेव के पिताश्री पंडित रूपकिशोर जी के इस सीन को कुछ समय के लिए रोक कर आइये संत एकनाथ जी की अटूट श्रद्धा का सीन देखें।

संत एकनाथ जी गंगोत्री से गंगाजल लेकर रामेश्वरम में भगवान शंकर पर चढ़ाने के लिए चले। कांवर में दोनों तरफ एक-एक घड़ा गंगाजल भरकर नंगे पैरों भयंकर कष्ट सहते हुए चले जा रहे थे, न भूख की परवाह, न तेज धूप की। चलते चलते पैरों में छाले पड़ गए थे परंतु एकनाथ जी को तो बस एक ही धुन लगी थी-रामेश्वरम भगवान पर जल चढ़ाकर सेवा संपन्न करने की धुन। इन सब कष्टों के सामने वह भला कहां गिरने वाले थे। सफर लम्बा था और मन में भगवान रामेश्वरम। काफी समय से सफर तय करते श्री एकनाथ जी ने लंबी दूरी तय कर ली थी। इस दूरी को तय करने में उनको रास्ते में विराम भी लेने पड़े थे, लेकिन थक कर चूर हो चुके

एकनाथ जी के सामने आनंद की बात यह थी कि अब मंजिल दूर नहीं थी। पथिकों की वार्ता से आभास हो रहा था कि भगवान रामेश्वरम अब नजदीक ही हैं। संत एकनाथ बहुत प्रसन्न हो रहे थे कि अब मैं यह जल शीघ्र ही भगवान को अर्पित करके आनंद मनाऊंगा। लेकिन यह क्या, थोड़ा सा आगे बढ़ने पर संत एकनाथ देखते हैं कि एक गधा प्यास के कारण तड़पते हुए मरणासन्न स्थिति में पहुँच चुका है। यह घटना ऐसे प्रदेश में हुई थी जहाँ कहीं दूर-दूर तक पानी नहीं था। इसलिए देखने वाले केवल अफसोस जता कर आगे बढ़ जाते थे। धरती पर पड़े-पड़े वह गधा बड़ी असहाय दृष्टि से जल ले जाने वालों की ओर देख रहा था। संत एकनाथ जी को दया आई। उन्होंने सोचा चलो मैं एक घड़ा जल इस प्यासे जीव को पिलाए देता हूं और दूसरा घड़ा भगवान को अर्पित कर दूंगा। यह सोच कर एकनाथ जी ने अपनी कांवर को नीचे उतारा, प्यासे गधे को गंगाजल का एक घड़ा पिला दिया। गंगाजल पीकर उस गधे में जीवन के लक्षण लौटने लगे लेकिन अभी भी वह प्यास से बेदम हो रहा था। वह बैठने का प्रयत्न करने लगा परंतु बैठ नहीं पा रहा था और दूसरे घड़े के जल की ओर देख रहा था। संत एकनाथ जी ने सोचा कि इस प्रकार इसका जीवन न बच सकेगा अतः संत राज ने अपनी भगवान को जल चढ़ाने की इच्छा का त्याग करते हुए जल का दूसरा घड़ा भी उसे पिला दिया। जल पीकर वह गधा उठ कर खड़ा हो गया और एक ओर को चल दिया। एकनाथ जी खाली काँवर एक ओर पटक कर वापस चलने लगे। सोचा भगवान पर जल

चढ़ाने का पुण्य न मिला तो न सही लेकिन एक प्यासे की जान तो बच गई। लेकिन यह क्या- एकनाथ जी ने देखा कि वह गधा तो उनकी ओर ही वापिस आ रहा था। गधे ने मनुष्यों की भाषा में बोला," संत आओ गले मिलें और एक दूसरे को निहाल करके प्रसन्नता व्यक्त करें।"

आश्चर्यचकित संत का समाधान करते हुये गधे ने कहा, "मैं ही रामेश्वरम् हूँ। सच्चे भक्त का दर्शन करने हेतु इस मार्ग पर पड़ा प्यास से तड़पता रहता था। पुजारी बहुत निकलते थे, पर दयालु संत आप ही मिले, आज मेरा दर्शन मनोरथ पूर्ण हो गया।"

संत एकनाथ पीड़ित गधे के रूप में भगवान् को देखकर उनके चरणों में गिर पड़े और बोले," प्रभु अब मैं सदा आपके "दरिद्रनारायण" स्वरूप की ही पूजा करूंगा और पीड़ितों-पतितों की सेवा में निरत रहकर आपकी सच्ची भक्ति में संलग्न रहूँगा।"

ईश्वर के प्रति भरपूर श्रद्धा दर्शाता संत एकनाथ जी का यह सीन और परम पूज्य गुरुदेव की छपको अम्मा के प्रति श्रद्धा,दोनों ही उन साधकों के लिए एक बहुत ही प्रभावशाली मार्गदर्शन का कार्य कर सकता है जिन्हे सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति में तनिक भी शंका हो।

बालक श्रीराम के पिताश्री कह रहे थे, "जीवन परमात्मा की देन है। जीवन की रक्षा से बड़ा कोई धर्म नहीं है।" कुछ देर चुप रह कर वह फिर बोले, "लेकिन तुम्हारा भी कोई दोष नहीं है। समाज की मान्यताएँ ही गड़बड़ाई

हुई हैं। यह मान्यताएं अधिक दिन तक नहीं चलने वालीं। समय बदलेगा, धीरे-धीरे सब बदलेगा।" फिर पुत्र श्रीराम की ओर देखकर उन्होंने कहा, "पुत्र, समझो,तुम्हारा भी एक पुश्चरचरण हो गया समझो, जुग,जुग जियो पुत्र,प्रसन्न रहो।"

छपको अम्मा की कथा का तीसरा एवं अंतिम पार्ट :

पिताश्री के आशीर्वाद ने श्रीराम का उत्साह बढ़ा दिया। कोठरी से निकल कर वह सीधे बस्ती की ओर गए और वहाँ छपको अम्मा को पुकारा। छपको अम्मा ने मन ही मन कहा- सुबह ही तो यह ब्राह्मण कुमार कह कर गया था कि "अब नहीं आऊंगा" तो अब क्यों आ गया है? छपको को गाँव वालों का डर भी सता रहा था। अभी तक झोंपड़ी में पड़ी उपचार करा रही थी। श्रीराम के आने पर गाँव में क्या प्रतिक्रिया है, इसका भान नहीं था। गाँव में जाना शुरू करेगी तब पता नहीं क्या होगा। चिंता में डूबी जा रही थी कि श्रीराम की पुकार ने फिर झिंझोड़ दिया। पहले तो यही विचार उठा कि गाँव वालों के किसी फैसले की सूचना लेकर आए होंगे,शायद आगाह करने के लिए। वह किसी विचार पर स्थिर होती इससे पहले ही ब्राह्मण कुमार "अम्मा-अम्मा" कहते भीतर उपस्थित थे। वाणी में उल्लास गूंज रहा था और चेहरे पर गर्व, जैसे कोई बड़ी सफलता प्राप्त कर ली हो। पता नहीं छपको ने बालक श्रीराम के गर्व को पहचाना कि नहीं या फिर पहचान सकने के बावजूद ध्यान नहीं दिया लेकिन अम्मा ने कहा, "ब्राह्मण देवता आप यहाँ न आया करो। अब मैं ठीक हूँ। आपको यहाँ आते

देख लोग मुझे गाँव में घुसने नहीं देंगे।” छपको अम्मा के ब्राह्मण कुमार शायद इस स्थिति को समझ गए थे। उन्होंने कहा, “आप चिंता न करें अम्मा,चाचा ने जो प्रायश्चित बताया था, पिताजी ने उसे मना कर दिया हैऔर मुझे आशीर्वाद दिया है कि आपकी सेवा कर मैंने अच्छा काम किया।” छपको को अपने कानों पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। श्रीराम ने ज़ोर देकर कहा, “मैं सच कह रहा हूँ अम्मा” यह सुनकर अम्मा के चेहरे पर संतोष, निश्चिंतता और खुशी की मिली-जुली चमक फैल गई। अपने भावों को व्यक्त करते हुए उसने दोनों हाथ ऊपर उठा दिए जैसे आशीर्वाद दे रही हो। श्रीराम ने कहा अब किसी तरह का संकोच मत करना। इतना कहकर वे हवेली की ओर चल दिए।

लेकिन बात यहीं पर खत्म नहीं हो गई। पण्डित रूपकिशोर जी के निर्णय ने गाँव के पण्डितों एवं अन्य निवासिओं को भी नाराज़ कर दिया था। पुत्र ने नादानी में अपराध कर लिया। प्रायश्चित से वह शुद्ध हो गया। यहाँ तक तो ठीक था लेकिन पण्डित जी ने किस आधार पर उसके कृत्य को पुण्य ठहरा दिया और प्रायश्चित को ज़्यादती बताया। सभी कह रहे थे कि हमारा विश्वास है कि पुत्र मोह आड़े आ गया। पुत्र मोह ने पण्डित जी का धर्म-अधर्म विवेक छीन लिया है। इस बात को तूल देने में बाहिर वाले तो क्या, अपना कहने वाले स्वजन-संबंधी भी पीछे नहीं थे क्योंकि वह पण्डित जी की प्रतिष्ठा से जलते थे। तीन चार दिन में ही यह आलोचना अपने चरम पर पहुंच गयी। जलेसर के भागवती पण्डित कल्याण शर्मा के नेतृत्व

में पिताश्री को चुनौती मिली। शर्मा जी घर आए और पण्डित जी को कह गए- आप अपने पक्ष को शास्त्र सम्मत सिद्ध कीजिए नहीं तो पण्डित समुदाय से क्षमा मांगनी पड़ेगी। कल्याण जी के तेवर में विरोध या द्वेष कम लेकिन संशय का भाव अधिक दिखाई दे रहा था। इस स्थिति में संवाद करके समाधान ढूंढना ही उचित था। इसलिए पण्डित रूपकिशोर शर्मा जी (गुरुदेव के पिता जी) ने उनका उत्तर पंचायत में देने को कहा। संध्या के समय पंचायत बैठी। पण्डित जी ने अपना पक्ष रखते हुए कहा कि आचार पहला प्रमाण है। पुत्र श्रीराम ने महामना मालवीय जी से यज्ञोपवीत ग्रहण किया है। वह प्रातः सायं नियमित संध्या एवं गायत्री साधना कर रहा है। शास्त्र वचन है कि यदि कोई श्रद्धा विश्वास से तीन वर्ष तक गायत्री का जप कर ले तो ब्राह्मीभूत हो जाता है। श्रीराम नैष्ठिक गायत्री उपासक है और किसी को नहीं लगना चाहिए कि अछूत कही जाने वाली छपको की सेवा कर, उसने धर्मविरुद्ध आचरण किया है। उसके मन में सेवा की प्रेरणा तो भगवती गायत्री से आनी चाहिए।

नैष्ठिक उपासना और आचार के प्रमाण ने ही आधे से अधिक लोगों को चुप करा दिया। फिर शबरी प्रसंग से उन्होंने समझाया कि उसके जूठे बेर खाने के बावजूद भी भगवान् की मर्यादा भंग नहीं हुई, तो अपने से छोटों या निम्नजाति की सेवा करने से मनुष्य का पतन कैसे हो सकता है ? पण्डित जी ने अनेक उदाहरण और शास्त्र वचनों के प्रमाण देकर निरूपित किया कि “अस्पृश्यता अपराध है।” निम्नजातिओं से घृणा करना पाप है। पण्डित

रूपकिशोर जी के प्रतिपादन की किसी के पास काट नहीं थी। भागवती कल्याण जी ने उनके लॉजिक को विवेक और धर्मसम्मत बताया। श्रीराम के आचरण में कोई दोष नहीं है। उन्होंने इतनी ही सावधा

रखने के लिए कहा कि समाज के आग्रह का भी थोड़ा निर्वाह करना चाहिए। गाँव में विरोध सचमुच धीरे-धीरे कम हो गया। यह पण्डित पंचायत के अलावा श्रीराम के व्यवहार और सेवा भाव के कारण भी था।

छपको की सेवा और उससे उत्पन्न विवाद का समाधान होने के तुरन्त बाद श्रीराम अपने अलग हुए साथियों को ढूंढते हुए उनके पास गए। घर वालों के डर से ही वे अलग हुए थे। वरना मन में श्रीराम की मित्रता और सहचर्या की ललक उनके मन में भी रहती थी। अपने मित्र के बुलाने और घर से लोगों का दबाव ढीला पड़ने पर सभी साथ आ गए। अपने मित्रों को साथ लेकर श्रीराम ने स्वयंसेवकों का छोटा सा दल बनाया। इन लोगों को मरहम पट्टी और प्राथमिक उपचार की जानकारी दी। यह विद्या किसी स्कूल या शिविर में नहीं सीखी थी। ताई जी को परिवार में छोटी मोटी बीमारियों का इलाज करते देखा था। चोट, मोच आदि आने पर पट्टी बाँधते, मालिश करने की कला भी उन्हीं से सीखी थी। श्रीराम ने टोली के सदस्यों को यह कला सिखा दी। मौसम बदलने पर उन दिनों कोई न कोई बीमारी फैलने लगती थी। सर्दी बुखार, फोड़ा-फुंसी और पेट की बीमारियाँ आम बात थीं। आज भी गाँवों में ये रोग फैलते हैं। आज की तुलना में उन दिनों की दशा हज़ार गुना खराब रही होगी। बारह-तेरह वर्ष

के श्रीराम ने अपने स्तर पर ही इन बीमारियों से लड़ने की ठानी। स्वयंसेवकों की टोली हर जगह इलाज के लिए तो नहीं जा सकती थी। उसका उपाय यह सोचा कि रोजमर्रा की समस्याओं के नुस्खे समझाएँ जाएँ,नुस्खे जुटाएँ। पालतू पशुओं को होने वाली बीमारियों के घरेलू उपचार भी ढूँढे। उन्हें भी लिखा और अपने साथियों को उनकी नकल तैयार करने में लगाया। इस तरह कई प्रतियाँ तैयार हो गई। पर्चेनुमा ये पोस्टर आँवलखेड़ा ही नहीं आसपास के गाँवों में भी चिपकाए। पर्चे ज्यादा संख्या में नहीं थे, उन्हें चिपकाने के लिए मंदिर, स्कूल, धर्मशाला या चौपाल जैसी जगहें चुनी गईं जहाँ लोगों का आना जाना बना रहता था। जिन दिनों यह काम चल रहा था,उन्हीं दिनों गाँव में बुखार फैला । लोगों को उसका नाम मालूम नहीं था। बदन में जोरों का दर्द उठता और फिर भट्टी की तरह तप उठता था। संभवतः वह मलेरिया बुखार रहा होगा। उन दिनों ऐसे किसी बुखार को तुरन्त ठीक कर देने वाली दवा भी नहीं आई थी। छटपटाने और हायहाय करने के सिवा किसी के सामने कोई चारा नहीं था। श्रीराम ने ताईजी से ऐसे बुखार का नुस्खा समझा । तुलसी,अदरक, लौंग आदि चीजें यहाँ वहाँ से जुटाईं और पशुशाला में पत्थर जमा कर चूल्हा बनाया। उसी पर काढ़ा पकाया और जिन जिन लोगों को बुखार आया था सबको पिलाया, दिन में तीन बार काढ़ा पिलाने में टोली के सभी सदस्य व्यस्त रहते थे। खाने-पीने की सुध भी भूल गए। बुखार के खिलाफ खोले गए इस मोर्चे में श्रीराम दल की ही

जीत हुई। ठीक होने के बाद लोगों को बता भी दिया कि बुखार आने पर इस तरह की औषधि लिया करें। इस तरह के पुरषार्थ ने बालक श्रीराम को लोगों में एक विवेकशील नेता बना दिया।

7.बालक श्रीराम की ननिहाल यात्रा 1 :

1924 का पहला या दूसरा महीना था। श्रीराम अपने पिता के साथ ननिहाल गए। वहाँ भागवत सप्ताह का आयोजन था। पारायण करने वाले विद्वान दूसरे ही थे, पंडित रूपकिशोर जी को जामाता की हैसियत से निमंत्रित किया गया था। ताई जी वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं। पिता और पुत्र कथा आरम्भ के एक दिन पहले आँवलखेड़ा से रवाना हुए और यथासमय पहँचे। रास्ते में बालक श्रीराम ने पिता जी से कछ जिज्ञासाएँ की या यों कहें कि छपको प्रसंग के समय मन में उठे कछ सवाल रखे। एक सवाल यह था कि आप भागवत का उपदेश करते हैं। उस अधिकार से भी छपको की सेवा को उचित ठहरा सकते थे,आपने कल्याण पण्डित को गायत्री उपासना का हवाला क्यों दिया? पिताश्री ने समझाया; इसलिए कि भागवत शास्त्र गायत्री मंत्र की ही व्याख्या है। भागवत ही नहीं सभी शास्त्र इसी का विस्तार है। यह बीज रूप है। पण्डित जी ने समझाया कि भागवत् शास्त्र को गायत्री ने ही अधिकृत किया है। उसका आरम्भ गायत्री से हुआ है, इसलिए वह भागवत है।

ननिहाल तक का रास्ता इस विषय पर चर्चा में कट गया कि गायत्री सभी शास्त्रों का, इस युग के प्रतिनिधि ग्रंथ भागवत का आधार है, क्योंकि वह

सनातन धर्म का भी आधार है। उन्होंने समझाया, वाल्मीकि ने गायत्री के चौबीस अक्षरों के आधार पर चौबीस हजार श्लोकों में रामकथा लिखी थी। रामायण की जो प्रतियाँ इस समय मिलती है उनमें पूरी रामायण में एक निश्चित अंतराल से एक श्लोक गायत्री के एक अक्षर से आरम्भ होता है। उसी अंतराल के बाद एक श्लोक अगले अक्षर का उद्घोष करता है। कुछ सौ वर्ष पहले गोस्वामी तुलसीदास ने लोकभाषा में रामकथा गानी चाही। उन्होंने सनातन धर्म का स्वरूप उस समय के अनुरूप समझाना चाहा तो रामायण और भागवत दोनों का आश्रय लिया। रामायण से उन्होंने भगवान का चरित्र लिया और भागवत से भक्ति । दोनों का समन्वय कर उन्होंने रामचरितमानस लिख दिया। भागवत भूमि के सेवन के दिन प्रात: संध्या के बाद उन्होंने ग्रंथ की रचना आरम्भ की थी। साधक किसी को भी अपना इष्ट बनाए, उसे गायत्री जप से ही आरम्भ करना पड़ता है।

श्रीकृष्ण के आंगन में कुछ देर रुक कर उन्होंने कहा, “यों समझो कि गायत्री मंत्र चाबी है और सभी साधनाएँ कोष भण्डार। इस चाबी के बिना भक्ति ज्ञान और योग का भण्डार सुलभ नहीं होता।” सप्ताह पारायण की अवधि में पिताश्री गायत्री महिमा के साथ भागवत शास्त्र और धर्म की बातें बताते रहे। उन बातों में श्रीराम का मन अच्छी तरह लग रहा था। कथा पूरी होने के दिन पिता पुत्र दोनों वापस चलने की तैयारी करने लगे। ताई जी ने भी चलने का मन बनाया। बाद में किसी को छोड़ने के लिए आना पड़े इससे अच्छा है कि साथ ही निकल आया जाय।

साथ चलना तय हो गया सो ताई जी ने कहा, “यहाँ तक आए हैं, मथुराजी पास में ही हैं,अगर आपको असुविधा नहीं होती हो तो द्वारिकाधीश के दर्शन करते चलें।” इस नए कार्यक्रम में लगने वाले समय का हिसाब लगाते हुए पण्डित जी सोचने लगे। ताईजी ने अपनी बात को थोड़ा और वजन दिया और कहा, “ पुत्र श्रीराम भी साथ में ही है। उसने भी द्वारिकाधीश के दर्शन नहीं किए हैं। यमुनाजी के दर्शन भी हो जाएंगे।” ताई जी का आग्रह सुन कर पण्डित जी हँसे। उन्होंने मथुरा होते हुए आँवलखेड़ा लौटने का कार्यक्रम बना लिया। इस तरह निकलने पर यात्रा में दो दिन और लग जाने थे।

ब्रज मण्डल में घने छायादार वृक्षों का अभाव रहा है। रेत और धूल मिट्टी से सने रास्ते में यात्रियों को प्रायः असुविधा ही होती है लेकिन जिन दिनों इस परिवार ने मथुरा का रास्ता लिया उन दिनों जाड़े का मौसम था। उतरते हुए माघ के दिनों में कड़कड़ाती ठंड पड़ती थी, इसलिए सहपऊ नगर से मथुरा आते हुए असुविधा नहीं हुई। गुनगुनी धूप ने जाड़े को दूर भगा दिया और दोपहर ढलने से पहले ही मथुरा के पास आ गए। मुश्किल से दो ढाई किलोमीटर की दूरी रही होगी, सामने एक पहाड़ी दिखाई दी। पहाड़ी के ऊपर मन्दिर था। घण्टियों की आवाज आ रही थी, इससे लगता था कि लोग आते जाते होंगे।

आपने भगवान् को देखा है ?

श्रीराम ने पिताश्री से पूछा यह किसका मन्दिर है। नगर के बाहर होने से अनुमान लगाया कि यह ग्राम देवता का मंदिर होगा। नगर या बस्ती की सीमा शुरू होने के पहले हर जगह इस तरह के स्थान होते हैं। पुत्र ने मंदिर देखने की इच्छा जताई। ताई जी और साथ के लोगों सहित सभी पहाड़ी पर चढ़ गए। मंदिर में गोविन्द जी की प्रतिमा स्थापित थी। उनके दर्शन कर थोड़ी देर सुस्ताने लगे। गर्भगृह के बाहर बने चबूतरे के नीचे कुछ क्षण बैठे ही थे कि गरजती हुई आवाज गूंजी 'जय जय राधे'। पण्डित जी ने देखा एक साधु उनकी ओर देखता हुआ चला आ रहा है। लम्बी दाढ़ी और सिर के उड़े हुए बालों वाले इस संन्यासी की उम्र 60-65 के आस-पास रही होगी। पण्डित जी ने उन्हें प्रणाम कहा। साधु ने उत्तर में पूछा, " कुछ आहार बचा है भगत ?।" ताई जी ने अपनी गठरी में से चार पूड़ियाँ निकाली और उन पर अचार रख कर पण्डित जी की ओर बढ़ाया। पण्डित जी ने वह भोजन साधु को आदर पूर्वक दे दिया। जीते रहने की दुआ देता हुआ साधु जिस दिशा से आया था, उस दिशा में जाने लगा। ताई जी के पास चुपचाप बैठे श्रीराम यह सब देख रहे थे। साधु को जाते हुए देखते ही उन्होंने आवाज़ लगाई और पूछा, "बाबाजी आपने भगवान् को देखा है।" साधु बच्चे की आवाज से ठिठका और कुछ संभलते हुए बोला, "नहीं। लेकिन देखना चाहता हूँ। उन्हें पाने के लिए ही उनकी भूमि में भटक रहा हूँ।" इतना कह कर साधु निहारने लगा। श्रीराम ने कहा, "बाबाजी भटकना

छोड़िए और भगवान् की भूमि का सेवन कीजिए। वे यहीं मिलेंगे।" बात बहुत सीधी सरल थी, लेकिन साधु के मन को पता नहीं कहाँ छू गई। साधु ने सेवन का न जाने क्या अर्थ समझा कि वह गोविन्द जी के मंदिर के बाहर मिट्टी में लोट-पोट होने लगा। रज का स्पर्श पा कर जैसे उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा हो । वह अनुग्रहीत सा कहे जा रहा था, "तुमने राह दिखा दी बच्चा । मेरा भटकाव पूरा हो गया। प्रभु तो मिले ही हुए हैं, मैं ही अपने नेत्र बंद किए था।" यह कहते हुए साधु ने बालक श्रीराम को प्रणाम करना चाहा। इससे पहले कि साधु महाराज पास आते,ब्राह्मण कुमार (गुरुदेव) दूर दौड़ गए थे।

पिताश्री और ताई जी, दोनों साधु और पुत्र के संवाद को सुनकर चुपचाप बैठे रहे थे। श्रीराम के दौड़ लगाने पर उन्होंने रुकने के लिए कहा और रुकने पर उठ कर साथ चल दिए। द्वारिकाधीश तक की यात्रा इसके बाद चुपचाप सम्पन्न हुई। रास्ते में कोई कुछ नहीं बोला।

मथुरा पहुँच कर ताई जी ने द्वारकाधीश के दर्शन किए। श्रीराम ने मंदिर और मथुरा के बारे में पिताश्री से अनेक प्रश्न किए। इन प्रश्नों में कौतूहल और जिज्ञासा दोनों भाव समाहित थे। द्वारकाधीश मंदिर मुश्किल से दो सौ साल पुराना है। सन् 1814 में बनवाए इस मंदिर में भगवान् श्रीकृष्ण की राजसी प्रतिमा विराजमान है। द्वारिकाधीश के दर्शन करने के बाद पूरा परिवार कटरा केशवदेव गया। भगवान कृष्ण का जन्म वहीं हुआ समझा जाता है। कटरा केशवदेव से निकल कर परिवार विश्राम घाट पहुँचा।

श्रद्धालुओं का विश्वास है कि केशवदेव मंदिर में जहाँ पहले कंस किला था, वहां से भगवान् सीधे यमुना किनारे गए थे। उन्होंने और बलदाऊ ने कुछ समय यमुना तट पर बिताया था। भक्तों की भाषा में कंस और उसके रक्षकों से हुए संघर्ष के कारण भगवान् को जो थकान हुई थी उसे यमुना तट पर दूर किया था। जिस जगह भगवान् ने विश्राम किया, उसे विश्राम घाट कहते हैं। बालक श्रीराम ने पिताजी से पुछा कि क्या हम लोग भी यहाँ केशव मंदिर के दर्शन से हुई थकान उतारने यहाँ आए हैं। यह जगह हमारे लिए भी विश्राम घाट है। नटखट पुत्र की बात सुनकर पिता हँसे बिना न रहे।

बालक श्रीराम की ननिहाल यात्रा 2

जिन लोगों को मथुरा वृन्दावन की पावन भूमि के सेवन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह जानते हैं कि यहाँ की हवाओं में आज भी कृष्ण भक्ति का रस घुला हुआ है। लेकिन यह भी सत्य है जहाँ संवेदनशील चित्त इस पावन भूमि पर पांव रखते ही भक्ति की तरंगों को पकड़ने लगता है वहीँ पर यात्रियों को पुरोहितों और पण्डों के कारण अत्यंत कठिनाई का सामना भी करना पड़ता है। चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1 के अनुसार इन दिनों स्थितियाँ कुछ थोड़ी बहुत सुधरी तो हैं लेकिन किसी समय यह स्थान कुछ शरारती, उपद्रवी और लोभी पण्डों के कारण बहुत बदनाम था।

श्रद्धेय डॉक्टर प्रणव पंड्या जी एवं आदरणीय ज्योतिर्मय जी की इस अद्भुत पुस्तक माला का प्रथम पार्ट 2001 की गीता जयंती 26 दिसंबर

वाले दिन प्रकाशित हुआ था। इस पार्ट में वर्णित श्रीराम-लीला लगभग 100 वर्ष पुरानी हैं और उन्ही दिनों का एक किस्सा निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाया गया है। हमारे पाठक स्वयं ही निर्णय कर सकते हैं कि अगर 100 वर्ष पूर्व ऐसी सुधरी हुई दशा थी तो उससे पूर्व क्या होगी।

आइये देखें बालक श्रीराम की संवेदनशीलता को दर्शाता यह किस्सा।

परम पूज्य गुरुदेव के पिताश्री मथुरा वृन्दावन के पंडों से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए उन्हें तो कोई परेशानी नहीं हुई लेकिन दूसरे यात्रियों को सताए जाने के किस्से बालक श्रीराम एवं माता पिता को देखने को मिल ही गए ।

पंडों से घिर जाने पर एक यात्री कह रहा था कि आप लोग यहाँ आने वाले भक्तों और यात्रियों के दान दक्षिणा के भरोसे ही क्यों रहते हैं। आप भक्तों को दक्षिणा देने के लिए मजबूर करते हैं, कोई काम धंधा क्यों नहीं करते। यात्री के इर्द-गिर्द घेरा डाले पंडों में से एक ने कहा, “क्या काम धंधा करें लाला?” यात्री ने कहा, “कुछ भी काम,आप ठीक ठाक हैं, स्वस्थ हैं कोई भी काम कर सकते हैं।” पंडे ने यात्री के सुझाव का उपहास उड़ाते हुए कहा, “एक मेहनत तो हम कर ही सकते हैं कि अगर तू मर जाए, तुझे यमुना जी में फेंक दें, तो तेरे पास से जो कुछ भी मिलेगा वह हमारी मेहनत की कमाई होगी।”

यह उत्तर सुनकर आसपास खड़े पंडों समेत दूसरे लोग भी खी-खी कर हँस दिए। बालक श्रीराम ने पिताश्री की ओर आश्चर्य से देखा। पिताश्री ने पुत्र

की बाँह पकड़ी और चलने के लिए इशारा किया। श्रीराम ने कहा कि वे लोग यात्री को परेशान कर रहे हैं, कोई कुछ करता क्यों नहीं? पिताश्री ने कहा, पुत्र,पंडे संख्या में बहुत ज़्यादा हैं, अगर कोई कुछ कहेगा तो वह सब एक हो जाएँगे। इन लोगों से लड़ना बहुत ही कठिन है" श्रीराम ने बाल सुलभ सहजता और निराशा से कहा, "यह भगवान कृष्ण की नगरी है या कंस की ?" ताई जी ने कहा, "है तो भगवान कृष्ण की ही नगरी लेकिन कंस का प्रभाव यहाँ हमेशा ही रहा है।" श्रीराम ने प्रश्न का दूसरा भाग एक बार फिर कहा, "क्या यह इसी तरह चलता रहेगा, कोई सुधार नहीं होगा ?" पिता ने आश्वस्त करते हुए कहा,"ऐसी बात नहीं है पुत्र, परिस्थितियां सदा एक जैसी नहीं रहती, वह बदलती भी हैं।

विश्रामघाट के सती बुर्ज की ओर मुड़ते हुए उन्होंने एक गली की ओर इशारा किया और कहा, "आज से पचास साठ वर्ष पूर्व इस गली में एक प्रज्ञाचक्षु संन्यासी रहते थे प्रज्ञाचक्षु ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता जो नेत्रहीन होते हुए भी अपनी बुद्धि से सब कुछ जान लेता है। यह सन्यासी वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे, वह भी मथुरा की इन परिस्थितियों से दुःखी थे। धर्मक्षेत्र में और भी कई बुराइयाँ है उन सभी बुराइयों से लड़ना चाहते थे, लेकिन उन्हें दिखाई नहीं देता था इसलिए ज्यादा कुछ कर नहीं सकते थे।"

पिताश्री ने बालक श्रीराम को स्वामी दयानंद के गुरु स्वामी विरजानंद की एक कथा सुनाई। स्वामी विरजानंद जी के पास एक दिन गुजरात का एक

ब्रह्मचारी आया। उस ब्रह्मचारी ने कहा मैं वेदशास्त्रों का अध्ययन करना चाहता है ताकि सत्यधर्म की शोध कर सकूँ। स्वामी जी ने कहा दक्षिणा क्या दोगे? ब्रह्मचारी ने कहा, आप जो भी आदेश देंगें । स्वामी जी ने कहा, "पाखंड का नाश, धर्म के नाम पर चल रहे अधर्म का विरोध । कुरीतियों का उन्मूलन ।" शिष्य ने यह दक्षिणा देना स्वीकार किया और गुरु के पास रहकर समस्त विद्या पढ़ी। विद्या ग्रहण करने के बाद शिष्य,स्वामी दयानन्द ने पूरे देश का भ्रमण किया। धर्म का आवरण ओढ़े अधर्म के प्रति लोगों को जागृत किया और धर्म के असली स्वरूप से परिचित कराया।

बालक श्रीराम ने उत्सुकता जताई कि यह सब अकेले व्यक्ति ने कैसे कर लिया? पिताश्री ने कहा, "साहस और संकल्प हो तो असंभव दिखने वाले काम भी सहज ही संपन्न हो जाते हैं।" गुरु विरजानन्द से शिक्षा ग्रहण करके स्वामी दयानंद भ्रमण करते हुए हरिद्वार के कुंभ में गये। जहाँ भी जाते जगह-जगह लोगों से वैदिक धर्म की चर्चा करते। उसके मर्म को समझ कर प्रथा परंपराओं के पालन की बात करते। कुंभ में जाने का उनका उद्देश्य यह था कि वहाँ हज़ारों की संख्या में लोग इकट्ठे होते हैं। गाँव-गाँव घूमने पर सौ पचास लोगों से ही संपर्क हो पाता। कुंभ में सैकड़ों व्यक्तियों से एक साथ भेंट हो जाती। हरिद्वार पहुँच कर स्वामी दयानंद ने एक छोटा सा शिविर लगाया और बाहर एक झंडे पर "पाखंड खंडिनी पताका" लिखकर गाड़ दिया। उस पताका ने भी लोगों का ध्यान आकर्षित

किया। स्वामी जी शिविर के बाहर खड़े होकर मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतार, पुराण, कर्मकाण्ड आदि के नाम पर चलने वाले ढकोसलों की पोल पट्टी खोलने लगे। जातपात, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा और वैवाहिक कुरीतियों, अंधविश्वासों के बारे में भी बोलने लगे। उनकी बातों में नयापन था और वे तर्कसंगत भी थीं, लोगों के गले उतरने लगीं। उनका विरोध भी हुआ और समर्थन भी मिला। कुंभ और बाद की यात्राओं में मिले समर्थकों को लेकर स्वामी जी ने 'आर्यसमाज' नामक संगठन की नींव रखी। उन्होंने आजीवन यात्राएँ कीं। राजाओं और सामंतों से लेकर पंडितों, विद्वानों तक हर वर्ग के लोगों से मिले। उन्होंने दूसरे धर्म के अंधविश्वासों और कुरीतियों पर भी चोट की। उनकी बातों और कामों से जिन लोगों के स्वार्थ पर चोट पहुँचती, वही उनका विरोधी हो जाता लेकिन साथ देने वालों की भी कमी नहीं थी। उनका कार्य हर जगह फैल गया। आर्य समाज उन्हीं के सिद्धांतों का प्रचार करती है। आज भी उनके अनुयायी सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों से लड़ रहे हैं।

पिताश्री ने बालक श्रीराम को विस्तार से बताते हुए यह जानकारी भी दी कि स्वामी दयानंद के खिलाफ हमेशा षड्यंत्र रचे जाते थे। उनकी मृत्यु भी एक षड्यंत्र में ही हुई।

आइये देखें क्या था यह षड्यंत्र।

जोधपुर में कुछ लोगों ने मिलकर उनके रसोइये को अपनी तरफ मिलाया और उसके हाथों स्वामी जी को विष दिला दिया। स्वामी जी ने विष की

दारुण पीड़ा झेली और उसी से उनकी मृत्यु हो गई। मरते-मरते भी उन्होंने रसोइये को अपने पास से भगा दिया। उन्हें डर था कि अगर लोगों को इस बात का पता चलेगा तो रसोइये को जिंदा नहीं छोड़ेंगे। स्वामी जी ने उसे क्षमा कर दिया और उसके भाग जाने की व्यवस्था की।

बालक श्रीराम यह वृतांत बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। पिताश्री से मथुरा के अन्यान्य स्थानों का विवरण और कथाएँ सुनते हुए वापस लौट आए।

ननिहाल और मथुरा होते हुए संपन्न हुई इस यात्रा ने पिता के सान्निध्य में एक संस्कार दिया। वह संस्कार भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रति एक दृष्टिकोण के रूप में था। नियति ने उनके लिए जो दायित्व चुन रखा था उसके बाहर से किसी विशेष सहयोग की आवश्यकता नही थी लेकिन शुकदेव जैसी मुक्त आप्तकाम आत्मा को भी अपने पिता वेदव्यास से भागवत कथा सुनना पड़ी थी।

8.पिताश्री ने कहा, “अब तुम भगवान् के हुए।”

आंवलखेड़ा आगरा की जिस हवेली में हमारे परम पूज्य गुरुदेव रहते थे, उसमें तीन चाचा उनकी संताने और भाई बहिन भी निवास करते थे। बीस पच्चीस लोगों का भरा पूरा परिवार था। चाचाओं के ससुराल पक्ष के लोग भी आते जाते रहते थे। इस संयुक्त परिवार में सदैव हँसी-खुशी का माहौल रहता था । पिताश्री भागवत के प्रकांड विद्वान थे इसलिए पास पड़ोस की बस्तियों से आए लोगों से बैठक भरी रहती थी।

ननिहाल-मथुरा आदि की यात्रा से लौटकर आये पिताश्री को एक दिन सीने में दबाव महसूस हुआ। अच्छी तरह बैठे बात कर रहे थे कि दबाव और पीड़ा से दोहरे होकर लेट गए। उनके मुँह से “नमः भगवते वासुदेवाय” मंत्र का उच्चारण हुआ और बोली बंद हो गई। घर में कोहराम मच गया। हँसी-खुशी का माहौल चिंता में बदल गया और लोग अपनी तरह से पंडित जी की सार संभाल करने लगे। यह घटना दिन में ही घटी थी इसलिए चिकित्सा सहायता तुरंत उपलब्ध हो गई और कुछ ही देर में होश आ गया। तीन-चार दिन बाद पिताश्री सामान्य दिखाई देने लगे लेकिन स्वस्थ होने के बावजूद वैद्यों ने सावधान रहने के लिए कहा। उन्होंने बताया कि हृदय रोग का आक्रमण हुआ है और संभल कर रहना चाहिए। यात्रा आदि से बचें, काम का बोझ कम लें और जहाँ तक हो सके लोगों से मिलना जुलना भी सीमित कर दें। पिताश्री ने सबकी सलाह सुनी। कामकाज का दबाव और मिलना जुलना तो क्या कम किया, भजन पूजन में ज्यादा समय देने लगे। श्रीराम, जो किशोर अवस्था में ही थे,पिताश्री की बीमारी और उसके बाद उनमें आए बदलावों को बड़ी बारीकी से देख रहे थे। रोग बीमारी का शिकार होते हुए उन्होंने दूसरे लोगों को भी देखा था लेकिन पिताश्री इलाज के बाद बहुत शीघ्र ठीक हो जाते थे और रोजमर्रा का जीवनक्रम अपना लेते। हमेशा की तरह सहज होने में उन्हें ज़रा भी देर नहीं लगती। खानपान, रहन-सहन व्यवहार और दिन भर के कामकाज

पहले की तरह चलने लगते। बीमारी के कारण कमज़ोरी तो आती लेकिन ऐसा नहीं होता था कि स्वभाव और प्रवृत्तियाँ ही बदल जाए।

पिताश्री में विलक्षण परिवर्तन

हृदय रोग के आक्रमण के बाद पिताश्री में विलक्षण परिवर्तन आया। उनके कामकाज से ऐसा लगा जैसे कुछ समेटने में लगे हुए हों। जिस प्रकार यात्रा का समय निकट आने पर व्यक्ति सामान समेटने और उस अवधि के काम निपटाने की जल्दी मचाने लगता है, उसी तरह की आतुरता पिताश्री के व्यवहार में दिखाई देने लगी। वह बच्चों की ब्याह शादी, छोटे भाई बहिनों की ज़रूरतों और परिजनों की जिज्ञासाओं का समाधान करने में ज्यादा समय लगाने लगे।

पिताश्री ने पुत्र श्रीराम को एक दिन बुलाया और कहा कम से कम नौ दिन तक मेरे पास दो घंटा रोज बैठा करो और जो मैं कहूं उसे ध्यान पूर्वक सुना करो। पिता की आज्ञा शिरोधार्य तो होनी ही थी, जिस दिन से पिताश्री ने अपने पास बैठने के लिए कहा था, उसके एक दिन पहले क्षौरकर्म कराया।

क्या होता है क्षौरकर्म ?

पूरी तरह केश साफ़ करवाने को "क्षौरकर्म" कहा जाता है। कुछ लोगों का प्रश्न होता है कि क्षौरकर्म करना आवश्यक क्यों है? असल में जब भी हम कोई पुण्य कर्म करते हैं, कोई व्रत रखते हैं, अनुष्ठान वगैरह करते हैं तो देह शुद्धि करके ही करते हैं। हम जाने-अनजाने में अपने कार्यस्थल पर अथवा

बाहर की दुनिया में अनेक प्रकार के पाप करते हैं और सभी पाप कर्म इस देह में बालों से मजबूती से चिपक जाते हैं।

पुत्र से कहा कि अगले सात दिन तक व्रत नियम से रहना है। दिन में एक समय भोजन और एक समय फलाहार करते हुए एकाशन व्रत की व्यवस्था बता दी। पिता पुत्र दोनों के लिए भूमि पर बिस्तर बिछा कर सोने की व्यवस्था की गई। अगले दिन प्रातः पिताश्री ने भागवत की कथा सुनाना आरंभ किया। यह सिर्फ श्रीराम के लिए one-on-one शिक्षण सत्र (teaching session) था, अन्य किसी को भी भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया गया था। भागवत का कथा-भाग और सिद्धांत पक्ष इस प्रकार कहना शुरू किया कि उस दिन का विश्राम स्थल दो घंटे पूरे होते तक आ जाए। भागवत सुनाने का उद्देश्य पिताश्री ही भलीभांति जानते होंगे। इस विषय में उन्होंने अपने किशोर चिरंजीव को भी नहीं बताया। संभवतः भागवत शास्त्र के मूल भाव, जीवन और जगत के सत्य से परिचित कराना हो। भागवत का मूल भाव क्या है? विषम परिस्थितियों में भी धर्म का साधन। अपनी उन्नति के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न करना और प्रभु समर्पित जीवन जीना। भागवत कथा का आरंभ पृथ्वी पर कलियुग के अर्थात विषम परिस्थितियों, जटिलताओं और आत्मिक उन्नति में बाधाओं के आधिपत्य से होता है। इन स्थितियों का अंत करने के लिए जब उच्च आत्माएं निकलती हैं तो कलियुग भी क्षमा माँगने लगता है। भागवत शास्त्र के अनुसार कलियुग अशुभ का नाम है और पृथ्वी को मुक्त करने के

लिए कलि को पहले चार और फिर पाँच स्थानों पर रहने की छूट देते हैं। इन पाँच स्थानों में पहले चार असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता में वास करने के लिए कहते हैं। याचना करने पर पाँचवा स्थान रजस भी छोड़ देते हैं। रजस अर्थात् लोभ, दिखावा, अकड़, संकीर्ण भाव। जहाँ भी ये विकृतियाँ होगी, वहीं कलि के दुष्प्रभाव अर्थात् शोक-संताप होंगे।

भागवत का एक ही संदेश है "संतापों से बचने का एकमात्र मार्ग है, प्रभु समर्पित जीवन।" श्रृंगी ऋषि के शाप से परीक्षित का जीवन एक सप्ताह भर शेष रह गया तो वे चिंतित नहीं हुए क्योंकि वह प्रभु समर्पित जीवन जी रहे थे, इसलिए उन्होंने शेष दिनों के श्रेष्ठतम उपयोग की योजना बनाई। स्थितियाँ और संयोग ऐसे बने कि सातों दिन अध्यात्म चर्चा में व्यतीत हुए। कथा पूरी होने के बाद उन्होंने मृत्यु का अतिथि की तरह स्वागत किया और उत्सव की तरह उसे अपनाया।

सप्ताह भर के सान्निध्य में पिता पुत्र ने कथा प्रसंगों का आस्वाद लिया जिनके माध्यम से अध्यात्म और तत्वज्ञान की चर्चा की। ज्ञान, कर्म और भक्ति के सागर में स्नान किया । भागवत का एकादश स्कंध शुद्ध तत्वज्ञान का प्रतिपादन करता है। मुक्ति की प्राप्ति के विविध उपायों की विवेचना करते हुए इस स्कंध में भगवान वेदव्यास ने ललित ललाम भाषा का उपयोग किया है। तत्वज्ञान की चर्चा प्राय: गूढ़ गंभीर हो जाती है। वह पंडित प्रवर लोगों के लिए ही बोधगम्य होती हैं। जैसे वेदांत, योग, सांख्य मीमांसा आदि शास्त्र । इन शास्त्रों में दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन

गणित के सूत्रों की तरह किया गया। भागवत कथा के एकादश स्कंध में सभी दार्शनिक मतों को काव्य में निरूपित कर दिया है।

तुम भगवान के हुए- बहुत ही रोचक प्रसंग है:

कथा सुनने के दिनों में भी एकांत में जाने और ध्यान में लीन रहने का क्रम जारी था। अंतिम दिन की कथा सुनने के बाद एक विचित्र घटना घटी। पिता कहानी कहने या पाठ पढ़ाने की तरह ही भागवत कह रहे थे। कथा सुनने के बाद पुत्र श्रीराम ने पिताश्री से पूछा:

“श्रवण के बाद दक्षिणा दी जाती है । मैं आपको क्या भेंट करूं?” पिता अपने लाड़ले का मुँह देखते रह गए। श्रीराम ने फिर वही प्रश्न किया। पंडित जी ने बेटे की बाहें पकड़ कर खींच लिया और सीने से लगा लिया। इस बार भी कुछ नहीं बोले। तीसरी बार फिर वही प्रश्न किया तो उत्तर आया, “अपनेआप को भेंट कर दो।” श्रीराम ने कहा कि मैं तो पहले ही आपका हूँ । आपका आशय यदि अपनेआप को भगवान के लिए भेंट चढ़ा देने से है तो उसके लिए संकल्प ग्रहण कराइए। पिताश्री ने हाथ में जल लेकर संकल्प कराया। फिर कहा अब तुम भगवान के हुए। आशीर्वाद लेने के बाद श्रीराम हमेशा की तरह एकांत में चले गए।

गुफा वाली घटना के बाद वे जंगल में नहीं जाते थे। लेकिन कहाँ जाते हैं यह ताई के सिवाय किसी को पता नहीं था। उस दिन एकांत में गए तो घंटों बीत गए। शाम होने लगी फिर भी वापस नहीं आए। माँ को चिंता होने लगी। उन्होंने पंडित जी से पूछा कि बेटे को कहाँ भेज दिया है, अभी

तक नहीं आया। पिता भी चिंतित हुए। हिमालय जाने वाली घटना याद आ गई। परेशान होकर वे बोले, “कहीं हिमालय तो नहीं चला गया ?” ताई को भी आशंका हुई। फिर अपनेआप को ढाढ़स बंधाते हुए बोली, “गौरी बाग के शिवालय में एक बार दिखवा लीजिए। कहीं वहाँ भक्ति में न रमा हो।” गौरी बाग गाँव से डेढ़ मील दूर एक छोटा सा बगीचा था । वहाँ आम,अमरूद और नीम के कुछ पेड़ थे। बारहों महीने सन्नाटा रहता था। सोमवार, पूनम या शिवरात्रि के दिन लोग शिवालय में आते थे। बाकी समय सन्नाटा रहता था। इसी जगह श्रीराम ने अपना ठिकाना बना रखा था।

पिता खुद दौड़े चले गए। साथ में दो तीन व्यक्ति और थे। वहाँ जाकर देखा श्रीराम एक पेड़ के नीचे पालथी मारकर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। पंडित जी ने उन्हें पुकारा। कोई उत्तर नहीं आया, श्रीराम निश्चल बैठे ही रहे। उन्होंने दूसरी, तीसरी, चौथी बार पुकारा फिर भी कोई असर नहीं हुआ तो हाथ पकड़ कर हिलाने की कोशिश की। थोड़ा सा धक्का लगते ही श्रीराम आगे की ओर सिर के बल लुढ़क गए। ध्यान के समय गोदी में रखे हाथ हिलाने डुलाने के कारण प्रणाम की मुद्रा में जुड़ गए थे। लुढ़कते हुए उनकी स्थिति ऐसी थी जैसे सिर से प्रणाम करने के लिए आगे की ओर झुके हों और माथा टेक दिए हों। लुढ़कने के बाद वे उसी स्थिति में पड़े रहे। पंडित जी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। उन्होंने बेटा-बेटा कहा और नाम लेकर दसियों बार पुकारा, हिलाने डुलाने की कोशिश की, पकड़ कर बिठाना चाहा

लेकिन शरीर निढाल ही रहा। अनहोनी अनिष्ट आशंका से घिर कर उन्होंने नथुनों के पास अंगुली रखकर देखा, नब्ज टटोली और हृदय की धड़कन देखी। जीवन के लक्षण हैं या नहीं, फिर भी निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति नहीं आई। पिताश्री की ज़ोर से चीख निकल गई। साथ आए लोगों के चेहरों का भी रंग उड़ गया। चीख का ही शायद कुछ भान हुआ कि श्रीराम की ध्यान समाधि खुली। वे अपनेआप उठकर बैठ गए और अपने आपको संभालने से पहले पिताश्री का अभिवादन किया। पुत्र के प्रणाम से पंडित जी आश्वस्त हुए कि उनका बेटा सकुशल है। कहने लगे, “मैं तो डर ही गया था कि तुम चले गए।” श्रीराम ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। घर आकर पिता ने फिर वही बात दोहराई और भगवान को धन्यवाद देने लगे तो श्रीराम बोले, “आप उन्हें क्यों धन्यवाद देते हैं। आप मुझे भगवान को सौंप चुके हैं। आशीर्वाद दीजिए कि मैं अब उन्हीं का काम करूं।” ताई जी भी वहीं उपस्थित थीं। उन्हें ये बातें अच्छी नहीं लग रही थी। पति से कहने लगी, “आपने श्रीराम को पता नहीं क्या क्या पढ़ा सिखा दिया है,मुझे बहुत डर लगता है।”

9.किशोर श्रीराम की आंतरिक अनुभूति, कोई दिव्य दर्शन यां स्वप्न :

उस अनुभव के बारे में श्रीराम ने कुछ दिन बाद अपने साथियों को बताया। अपनेआप को भगवान् के लिए अर्पित कर देने के बाद लगा कि मन में अपूर्व शान्ति आ गई है। ध्यान में बैठे तो ऐसे लगा कि संसार जैसे गायब ही हो गया हो । अपने आसपास कुछ है ही नहीं। कितनी देर ध्यान में

बैठना हुआ, इसका स्पष्ट आभास नहीं है।उसी अवधि में एक अद्भुत प्रसंग घटा। वह प्रसंग आंतरिक अनुभूति थी, कोई स्वप्न था यां कोई दिव्य दर्शन । इस बारे में किशोर श्रीराम ने कुछ नहीं कहा। अनुभूति एक घटना की तरह थी जो प्रत्यक्ष होती लग रही थी। जिस समय यह हुई,तब भी यह आभास नहीं था कि ध्यान हो रहा है।

आइए देखें क्या थी यह अनुभूति :

ध्यान में बैठने से पहले श्रीराम शिवालय में जाते थे। उस दिन शिवालय में दर्शन करने के बाद वह आम के पेड़ के नीचे बैठे ही थे कि यह अनुभूति हुई। दर्शन कर नीचे उतर रहे है । मन में भाव आया कि आसन का स्थान अभी 24-25 पग दूर है। वस्तुस्थिति तो आसन पर बैठने की है लेकिन मन का लय होने के बाद मानस पटल पर सर्पदंश की चेतावनी का दृश्य चल रहा है।

सर्पदंश की चेतावनी: तुम्हारी मार्गदर्शक सत्ता तुम पर बराबर दृष्टि लगाए हुए है।

शिवालय के नीचे उतरते हुए पाँव के नीचे किसी कोमल वस्तु का आभास हुआ। देखा तो एक सर्प दब गया है। क्षण भर में ही कुपित सर्प ने अपना मुँह घुमाया और पाँव पर डस लिया। इस घटना से हतप्रभ श्रीराम कुछ समझें इससे पहले ही साँप ने पहले पिंडली में और फिर कमर के नीचे डसा। कहीं सुन रखा था कि साँप सिर्फ एक बार ही डंसता है। साथी ने रोका तो श्रीराम ने कहा लेकिन यह अनुभव हो रहा था। ध्यान में बैठे-बैठे

ही लग रहा था। दंश के बाद शरीर गिर गया। पता नहीं क्या-क्या उपचार किया गया। वह सब दिखाई दे रहा था। इस तरह दिख रहा था जैसे किसी दूसरे व्यक्ति को यह सब हो रहा है। सर्प विष चढ़ने लगा तो नींद के तेज झोंके आने लगे। आसपास बैठे लोग मुँह पर पानी के छींटे मार रहे थे। वैद्य जी आ गए। उन्होंने कुछ औषधियाँ मँगाई। तब तक मांत्रिक भी आ गया। वह मंत्र पढ़ते हुए थाली बजाने लगा। थाली की आवाज लयात्मक थी। मांत्रिक थाली पीटने के साथ मंत्र भी पढ़ता जा रहा था। वैद्य जी की मंगाई औषधि आ जाने के बाद काढ़ा तैयार किया गया। काढ़ा पिया, उससे आराम मिलने के बजाय पीड़ा और बढ़ गई। ऐसे लगा जैसे जगह-जगह साँप डस रहे हों, जैसे कि उनके दाँतों जैसी तीखी चुभन, जलन अनुभव होती है। फिर कुछ देर के लिए वह जगह सुन्न हो जाती है और कुछ ही पलों बाद चुभन फिर तेज़ हो जाती है। कुछ पता ही न चला कि कब प्राण छूट गए। होश आया तो देखा कि कोई जटाजूट धारी, सौम्य संन्यासी हमारे मृत शरीर को नदी से खींच कर बाहर ला रहे हैं। मृत जान कर परिवार के लोगों ने शरीर को शायद नदी में प्रवाहित कर दिया था।

किशोर श्रीराम अपनी इस अनुभूति में बता रहे हैं कि सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हुए व्यक्ति के शव को जलाया नहीं जाता। इस प्रथा के भौतिक कारण जो भी हों, आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार सर्प काल का प्रतीक है और जिसे काल ने स्वयं ही चुन लिया हो उसके शरीर में ऐसा कुछ नहीं बचता, जिसे विसर्जित किया जाए। संन्यासी ने श्रीराम के शरीर को नदी

से खींच कर बाहर निकाला और जमीन पर लिटाया। अचेत काया के पास बैठकर संन्यासी ने कुछ देर ध्यान लगाया। उन संन्यासी की सौम्य मूर्ति को पास बैठा अनुभव करते हुए चेतना धीरे-धीरे लौटने लगी। उन्होंने स्नेह से थपथपाया और कहा, "उठो घर जाओ,माता-पिता परेशान हो रहे होंगे।" संन्यासी का यह आदेश सुनकर उठने का उपक्रम किया तो अगला संदेश यह आया कि अब दोबारा यहाँ मत आना। घर में बैठकर ही ध्यान लगाना। श्रीराम बताते हैं कि उन्होंने सन्यासी के बारे में जानना चाहा था लेकिन डर के मारे पूछ नहीं सके। संन्यासी ने शायद मन की बात समझ ली,इसलिए बिना पूछे ही उत्तर दे दिया। उन्होंने कहा, "हम इस चराचर जगत् की मुक्ति का मार्ग खोज रहे एक साधक हैं बच्चा । कोई सिद्ध महात्मा मत समझना। एक साधारण संन्यासी भर हैं।" सन्यासी महाराज की बात सुनकर श्रीराम का कुछ कहने का साहस हुआ।उन्होंने निवेदन किया कि आप हमारा मार्गदर्शन कीजिए न पूज्यवर। संन्यासी ने कहा,

"अभी नहीं बच्चा,अभी तो हम स्वयं ही पथिक हैं लेकिन तुम्हारी मार्गदर्शक सत्ता तुम पर बराबर दृष्टि लगाए हुए है। उपयुक्त अवसर आने पर वह तुम्हारे पास पहुँचेगी। यह मत पूछना कि कब, हम सिर्फ यही कह सकते हैं कि ऐसा शीघ्र ही होगा। सन्यासी महाराज ने कहा कि विश्वास रखना और किसी को भी अपना गुरु बनाने की जल्दबाजी मत करना।"

संन्यासी आगे कुछ और भी कह रहे थे। क्या कहा, यह तो याद नहीं रहा। अंत में सिर्फ इतना ही सुनाई दिया कि उठ अब घर जा और आँख खुली तो

सामने पिताजी को विचित्र स्थिति में विलाप करते हुए देखा। उठकर उन्हें प्रणाम किया।

बाद में जो हुआ वह सभी को मालूम है।

पिताश्री ने समझा कि यह घटना भागवत कथा सुनाने के कारण हुई। पुत्र-मोह के कारण थोड़ी देर तक तरह-तरह के संकल्प विकल्प मन में उठते रहे। फिर कहा प्रभु को जो स्वीकार है वही होगा। श्रीराम के लिए ईश्वर ने कुछ पहले से ही नियत कर रखा है तो हम लोगों में से कोई भी क्या कर सकता है। हमें तो केवल संतोष ही करना चाहिए। कुछ देर मन को ढाढ़स बंधाते लेकिन फिर वापस पुत्र मोह में डूब जाते। यद्यपि पिताश्री अच्छी तरह जानते थे कि उनका पुत्र उन्हें छोड़ कर कहीं जाने वाला नहीं है लेकिन यह मोह भी तो बहुत बड़ा विलक्षण भाव है। मन को कहीं भी स्थिर नहीं ही होने देता, उसे बाँधकर हिलाता -डुलाता ही रहता है ।

श्रीराम के पिताश्री पंडित रूपकिशोर जी ने उसी क्षण निश्चय कर लिया कि वह पुत्र को भागवत कथा नहीं सुनाएगें, साधु-संतों और वैरागियों के बारे में नहीं बताएँगे, उन्हें पास फटकने भी नहीं देंगे ।

10.पिताश्री ने भागवत शास्त्र का विसर्जन कर दिया- पिताश्री का महाप्रयाण ।

इस निश्चय के बाद पिताश्री ने भागवत शास्त्र का विसर्जन करने की ठानी। जब भी कोई उपदेशक कथा प्रवचन से विराम लेना चाहता है तो

'पूर्णाहुति' का आयोजन करता है। यह परंपरा अब लुप्तप्राय है लेकिन जिन्होंने गुरु से दीक्षा लेकर शास्त्र का उपदेश किया हो वे इस मर्यादा को जानते हैं। शरीर से अशक्त होने पर, वृद्धावस्था में, वैराग्य होने पर, परिव्राजक संन्यासी (परिव्रज्या व्रत ग्रहण करके भिक्षा माँगकर जीवन निर्वाह करने वाला संन्यासी) बन जाने के बाद कई शास्त्री कथा आयोजन से भी मुक्ति पा लेते हैं। शरीर इस योग्य नहीं रहता अथवा कथा आयोजकों के लिए आवश्यक तामझाम नहीं जुटता इसलिए वे साधनों और विधियों का त्याग कर देते हैं। पिताश्री ने वंश परंपरा में असमय संन्यास का उदय होते देख भागवत की पोथी का विसर्जन करना चाहा। उसके लिए इक्कीस ब्राह्मण बुलाये, यज्ञ आयोजित किया और पूर्णाहुति के रूप में भागवत शास्त्र वासुदेव मंदिर में स्थापित कर दिया। जिस दिन मंदिर में शास्त्र की स्थापना की और भगवान् से निवेदन किया कि अब शास्त्र प्रवचन से विराम लेते हैं, उसी दिन बल्कि उस निवेदन के बाद ही पिताश्री की वाणी ने भी विराम ले लिया। उनका बोलना बंद हो गया। लोगों ने कहा कि पंडित जी की वाचा भगवत गुणगान के लिए ही खुली थी। कथा से विराम लिया तो स्वर भी चले गए।

कई बार ऐसा भी होता है कि शरीर से अस्वस्थ होने पर, वृद्धावस्था में, वैराग्य होने पर, परिव्राजक संन्यासी बन जाने के बाद कई शास्त्री कथा आयोजन से मुक्ति पा लेते हैं। शरीर इस योग्य नहीं रहता अथवा कथा

आयोजकों के लिए आवश्यक तामझाम नहीं जुटता इसलिए वे साधनों और विधियों का त्याग कर देते हैं।

भागवत विराम प्रक्रिया में यज्ञ सम्पन्न होने की ही देर थी कि उसी रात को पंडित जी की हालत बिगड़ी। बोली बंद होने के बाद उनका चलना-फिरना भी बंद हो गया। वे बिस्तर पर ही पड़े रहने लगे। इशारों से बात करते और होठों में कंपन होता रहता, जैसे द्वादश अक्षर मंत्र का जप कर रहे हों। अगले दिन उन्होंने भोजन लेने से मना कर दिया। स्वजनों ने आग्रह किया तो इशारे से कहने लगे कि अब वक्त आ गया है। भोजन के द्वारा शरीर को जबर्दस्ती आगे नहीं खींचना है। दो एक दिन में ही पंडित जी के बीमार होने और देह त्याग का संकल्प लेने की सूचना स्वजन संबंधियों में फैल गई। वे कुशलक्षेम जानने के लिए आने लगे। घर में लोगों की भीड़ रहने लगी। पंडित जी सबको देखते,हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करते। कुछ कहना तो संभव नहीं था लेकिन चेहरे के भाव कह रहे थे कि जाने-अनजाने में अब तक जो भी गलतियाँ हुईं हों, अपने किसी व्यवहार से किसी को भी कोई दुःख हुआ हो, तो उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। भावों की इस अभिव्यक्ति के बाद आगंतुक भी अभिवादन का उत्तर देते तो पंडित जी का चेहरा जैसे खिल उठता। शुक्ल पक्ष की दशमी का उदय होते ही पंडित जी ने दुलारे पुत्र श्रीराम को बुलाया और संकेत से ही कहा कि उठा कर बिठा दे। पुत्र श्रीराम ने सहारा देकर बिठाया और फिर पंडित जी ने अपनेआप ही पालथी लगाई, आसन लगाया, दोनों हाथ गोद में रखे, आँखें

बंद की और कुछ पल निश्चल बैठे रहे। 5-7 मिनट तक ध्यान मुद्रा में बैठे रहने के बाद उनके मुँह से 'नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्र निकला। पुत्र से उन्होंने कहा कि मूल भागवत का पाठ करें। श्रीराम ने मूल चार श्लोकों का पाठ शुरू किया-'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च.... ॥ पाठ के बाद वहाँ उपस्थित लोगों को समझाने के लिए अर्थ भी सुनाया।

“भगवान् कहते हैं कि सृष्टि के आदि में केवल मैं ही था। सत्, असत्, स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण प्रकृति भी नहीं थी। सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही हूँ। वह विश्व जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ। प्रलय में जो शेष रहता है, वह भी मैं ही हूँ। यह ब्रह्म का स्वरूप कहा गया है। आत्मा में असत, दुर्बलता और दुःख की जो प्रतीति होती है सत्-चित् और आनंद आदि की प्रतीति नहीं होती, उसे भी मेरी (भगवान् की) ही माया जानो।' 'पंच महाभूत जिस तरह छोटे बड़े सभी जीवों में प्रविष्ट होते हैं और कारण रूप से पृथक रहने के कारण अप्रविष्ट भी है, वैसे ही मूल भौतिक पदार्थों में मेरा प्रवेश है भी और नहीं भी । आत्मा को जानने वाले जिज्ञासु पुरुष को जानना चाहिए कि जो सब जगह और सर्वदा रहे वही आत्मा है।”

अर्थ और भाव पूरा होते होते तक पंडित जी ने शरीर से व्यतिरेक कर लिया यानि उनकी आत्मा का शरीर से संबंध टूट गया, उनकी आत्मचेतना विराट् चेतना में लीन हो गई। जिस तरह पंडित जी पद्मासन लगा कर वे

बैठे थे, इसके बारे में शास्त्रों में कहा गया है कि साधक अपने इष्ट में ही लय होता है।

महाप्रयाण के समय पंडित जी की आयु 67 वर्ष थी।महाप्रयाण होते ही घर में रोना-धोना मच गया लेकिन पुत्र श्रीराम गंभीर थे, जैसे कुछ सोच रहे हो या समझने का प्रयास कर रहे हों। उस समय पुत्र श्रीराम (हमारे परम पूज्य गुरुदेव) की आयु केवल 12 वर्ष की थी, शरीर और आत्मा का संबंध विच्छेद होते देखना उनके लिए पहला अवसर था । रोना धोना आरम्भ होते ही श्रीराम पिताजी के पार्थिव शरीर के पास आसन लगाकर बैठ गए ठीक उसी तरह जिस तरह कुछ समय पूर्व पंडित जी बैठे थे। ताई जी ने बेटे को इस तरह बैठते देखा तो वह ज़ोर से रो उठीं। उन्हें न जाने क्यों लगा कि पुत्र भी पिता का अनुकरण कर रहा है उन्हें छोड़कर जा रहा है। वह विधवापन को स्वीकार करने वाले प्रतीकात्मक क्रियाएँ संपन्न करने के स्थान पर पुत्र को झिंझोड़ने लगीं। श्रीराम फिर भी अविचल बैठे रहे। ताई जी को घर के लोगों ने समझाया। बाकी क्रियाएँ संपन्न करने के लिए कहा। घर वालों के हिसाब से श्रीराम अपनी सहज वृत्ति (Natural instinct) के अनुसार मृत्यु की इस घटना को अपने ढंग से समझ रहे थे। करीब बीस मिनट तक अविचल ध्यान मुद्रा में बैठे रहकर श्रीराम स्वयं उठ गए और परिवार के लोगों के साथ पिताजी के पार्थिव शरीर की विदाई में जुट गए। अंत्येष्टि और मरणोत्तर संस्कार के बाद परिजनों में विचार चला

कि पिताजी की विरासत को कौन संभाले। ज़मीन जायदाद की जिम्मेदारी से श्रीराम ने अपनेआप को तुरंत यह कहते हुए अलग कर लिया कि

"वह केवल पिता की भागवत परंपरा का पालन करेंगे। स्वयं को भगवान् के लिए ही रखेंगे और उन्हें ही अपना बनाएँगे।"

जब स्वजनों ने श्रीराम को ऐसा कहते सुना तो समझ लिया कि महाप्रयाण के पूर्व पंडित जी ने सात दिन तक जो कथा सुनाई थी यह उसी का प्रभाव है। जिम्मेदारियाँ सिर पर आएँगी तो सब संभल जाएगा। परिवार की वर्तमान पीढ़ी में सबसे बड़े ज्योतिप्रसाद के सिर पर पगड़ी बंधी। श्रीराम अंत तक यही कहते रहे कि वह घर-गृहस्थी और भूमि जायदाद संभालने के लिए नहीं बल्कि धर्म कर्त्तव्य का पालन करने के लिए हैं।

पिताश्री के नहीं रहने के बाद श्रीराम अपनेआप को अकेला अनुभव करने लगे। घर में और भी बहुत सारे सदस्य थे लेकिन उनकी रुचि खाने कमाने की विद्याओं में ज्यादा थी। खेतीबाड़ी, व्यापार और लगान वसूली के अलावा वे कोर्ट कचहरी के कामों में भी व्यस्त रहते। उन सदस्यों की ज्योतिष, आयुर्वेद, प्रशासन और समाज सेवा के क्षेत्र में अच्छी पैठ थी। योग, ध्यान, अध्यात्म आदि में श्रीराम की ही विशेष गति थी।

****